साहित्यका साथी

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक :

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

द्वितीय संस्करण, जुलाअी, १९५०

मूल्य : डेढ़ रुपये

प्रकाशककी ओरसे

[प्रथम संस्करणसे]

बहुत दिनोंसे हम अपनी 'रत्न' परीक्षाके विद्यार्थियोंके लिये अेक अैसी पुस्तककी कमी अनुभव कर रहे थे, जिसके द्वारा अुन्हें साहित्यके विभिन्न अंगोंकी जानकारी मिल सके। अिसके लिये हमने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीसे अनुरोध किया और अुन्होंने हमारा अनुरोध स्वीकार कर 'साहित्यका साथी' लिख देनेकी कृपा की। पुस्तककी पांडु-लिपि दो-तीन वर्ष पूर्व ही हमें मिल चुकी रहनेपर भी कुछ तो कागजके अभाव और कुछ अपने बढ़ते हुअे कामके सम्हालनेमें व्यस्त रहनेके कारण अिसे शीघ्र प्रकाशित करना संभव न हो सका। आशा है, अिस विलम्बके लिये हम क्षमा किये जायेंगे।

हिन्दीमें समालोचना-साहित्यकी बड़ी कमी है, खासकर निष्पक्ष और स्पष्ट समालोचना तो बहुत ही कम है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दरदास आदि कुछ अिने-गिने श्रेष्ठ समालोचकोंकी कृतियाँ नज़र आती हैं, और यद्यपि अुनसे हिन्दीके अिस अंग-विशेषकी बहुत कुछ पूर्ति हुअी है, फिर भी अभी बहुत बाकी है। कहना न होगा कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीकी कुशल लेखनी अिधर साहित्यके अिस अंगकी पूर्तिमें विशेष रूपसे लगी है। समालोचना-साहित्यपर अब तक वे जो कुछ लिख चुके हैं, 'साहित्यका साथी' अुन सबमें विशेष है।

साहित्य क्या है? साहित्यका स्वरूप क्या है? साहित्यका अुद्देश्य क्या है? लेखकके व्यक्तित्व, शैली, रचना आदिपर अुसकी समसामयिक और पूर्ववर्ती परिस्थितियोंका क्या प्रभाव पड़ता है? श्रेष्ठ लेखक किस तरह अपनी जातिका—अपने युगका—प्रतिनिधि कहलाता है? अच्छे साहित्यके लक्षण

क्या हैं ? शब्दकी शक्तियाँ—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना—काव्यमें क्या महत्व रखती हैं ? अलंकार और रसोंका काव्यमें क्या प्रयोजन है ? अुनका अुचित अुपयोग किस तरह किया जाना चाहिये ? कविता और अुसका लक्ष्य क्या है ? काव्यके भेद क्या हैं ? अुपन्यास और कहानीकी विशेषता क्या है ? अुनके प्रमुख तत्त्व कौन-कौन-से हैं ? अुपन्यास या कहानीका अुद्देश्य क्या है ? नाटकके विभिन्न अंग—अुसका स्वरूप और अुसकी अुपयोगिता क्या है ? समालोचना कैसी हो ? अुसकी विभिन्न पद्धतियाँ कौन-कौन-सी हैं ? निबंध किसे कहते हैं ? अुनकी कौन-कौन-सी कोटियाँ हैं ? अुनका अुद्देश्य क्या है ? साहित्यका चरम लक्ष्य क्या है ? —आदि साहित्यके विभिन्न अंगोंपर ‘साहित्यका साथी’ पूर्ण प्रकाश डालता है ।

आचार्य द्विवेदीजीके हम अत्यंत कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर अिस पुस्तकको लिख देनेकी कृपा की और अिस तरह राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचारमें हमारा हाथ बँटाया ।

हमें आशा है कि न केवल साहित्यके विद्यार्थियोंके लिये किन्तु साहित्यमें अभिरुचि रखनेवाले सहृदय साहित्य-प्रेमियोंके लिये भी ‘साहित्यका साथी’ अेक सच्चा साथी सिद्ध होगा ।

अिस अनुपम कृतिके लिये ‘राष्ट्रभाषा’-संसार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका सदा आभारी रहेगा ।

१-९-’४९
हिन्दी नगर,
वर्धा

—मंत्री
रा. भा. प्र. समिति

अनुक्रमणिका

—:*:—

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय पृष्ठ-संख्या

—

विषय पृष्ठ-संख्या

साहित्यका साथी

१. साहित्य

§१. 'साहित्य' शब्दका प्रयोग आजकल बड़े व्यापक अर्थमें होने लगा है। किसी खास विषयकी समस्त पुस्तकें अुस विषयका साहित्य कहलाती हैं। ज्योतिषका साहित्य कहनेसे ज्योतिष विषयकी सब पुस्तकें समझी जायेंगी, और प्रौढ़-शिक्षा विषयक साहित्यसे वे सभी पुस्तकें समझी जायेंगी जिनमें प्रौढ़-शिक्षाके सिद्धांतों, प्रयोगों आदिकी चर्चा हो। परन्तु अिस शब्दकी व्यापकता केवल पुस्तकोंतक ही सीमित नहीं है। 'लोक-साहित्य' वह साहित्य है जो बहुत कम लिपिबद्ध हुआ है। अुसमें जनताके मुखमें ही जीवित रहनेवाले गानों, कहानियों, मुहावरों और लोरियों आदिका समावेश है। परन्तु अितने व्यापक अर्थमें प्रयोग होते रहनेपर भी 'साहित्य' शब्दका प्रयोग अेक विशिष्ट अर्थमें भी होता है। अगर समूचे ग्रंथ-समूहको व्यापक अर्थमें साहित्य मान लें तो स्पष्ट ही अुसमें तीन श्रेणीकी पुस्तकें मिलेंगी :—

(१) कुछ पुस्तकें केवल हमारी जानकारी बढ़ाती हैं, अुनके पढ़नेसे हम बहुत-सी नअी बातोंके विषयमें सूचना पाते हैं; परन्तु अुनसे

हमारी बोधन-शक्ति या अनुभूति बहुत कम अुत्तेजित होती है। अिसे 'सूचनात्मक-साहित्य' कह सकते हैं।

(२) कुछ दूसरी पुस्तकें अैसी मिलेंगी जो हमारी जानकारी तो बढ़ाती ही हैं, हमारी बोधन-शक्तिको भी निरन्तर जागरूक और सचेष्ट बनाअे रहती हैं। दर्शन, गणित और विज्ञानकी पुस्तकें अैसी ही होती हैं। अिन्हें 'विवेचनात्मक-साहित्य'के अन्तर्गत माना जा सकता है, क्योंकि अिस प्रकारके साहित्यके मूलमें हमारी विवेक-वृत्ति है, जो निरन्तर भिन्न वस्तुओं, नियमों और धर्मोंकी विशिष्टता स्पष्ट करती रहती है।

(३) अिन दोनोंके अतिरिक्त अेक तीसरी श्रेणी भी है। यह आवश्यक नहीं कि अिस श्रेणीकी पुस्तकोंसे नअी जानकारी ही प्राप्त हो, वे हमारी जानी हुअी बातोंको भी नये सिरेसे कह सकती हैं और फिर भी हमें बारबार अुन्हीं जानी हुअी बातोंको पढ़नेके लिये अुत्सुक बना सकती हैं। ये पुस्तकें हमें सुख-दुःखकी व्यक्तिगत संकीर्णता और दुनियावी झगड़ोंसे अूपर ले जाती हैं, और सम्पूर्ण मनुष्य-जातिके—और, और भी आगे बढ़कर प्राणिमात्रके—दुःख-शोक, राग-विराग, आह्लाद-आमोदको समझनेकी सहानुभूतिमय दृष्टि देती हैं। वे पाठकके हृदयको अिस प्रकार कोमल और संवेदनशील बनाती हैं कि वह अपने क्षुद्र स्वार्थको भूलकर प्राणिमात्रके दुःख-सुखको अपना समझने लगता है—सारी दुनियाके साथ आत्मीयताका अनुभव करने लगता है। पुराने शास्त्रकारोंने अिस प्रकारके मनोभावको **'सत्वस्थ'** होना कहा है [दे० §२९]। अिससे पाठकको अेक प्रकारका अैसा आनंद मिलता है जो स्वार्थगत दुःख-सुखसे अूपरकी चीज़ है। शास्त्र-कारने अिसीको 'लोकोत्तर आनंद' कहा है। कविता, नाटक, अुपन्यास, कहानी आदिकी पुस्तकें अिसी श्रेणीकी हैं। अेक शब्दमें अिस तीसरी श्रेणीके

साहित्यको 'रचनात्मक-साहित्य' कहा जा सकता है, क्योंकि असी पुस्तकें हमारे ही अनुभवोंके ताने-बानेसे अेक नये रस-लोककी रचना करती हैं। अिस प्रकारकी पुस्तकोंको ही संक्षेपमें 'साहित्य' कहते हैं। 'साहित्य' शब्दका विशिष्ट अर्थ यही है। अिस पुस्तकमें अिस तीसरी श्रेणीकी पुस्तकोंके अध्ययन करनेका तरीका बताना ही हमारा संकल्प है।

§२. 'साहित्य' शब्दका व्यवहार नया नहीं है। बहुत पुराने ज़मानेसे लोग अिसका व्यवहार करते आ रहे हैं। समयकी गतिके साथ अिसका अर्थ थोड़ा-थोड़ा बदलता ज़रूर आया है, पर सब मिलाकर अिसका अर्थ प्रायः अूपर बताअे अर्थमें ही होता रहा है। यह शब्द संस्कृतके 'सहित' शब्दसे बना है जिसका अर्थ है 'साथ-साथ'। 'साहित्य' शब्दका अर्थ अिसलिये 'साथ-साथ रहनेका भाव' हुआ।

दर्शनकी पोथियोंमें अेक क्रियाके साथ योग रहनेको ही 'साहित्य' कहा गया है। अलंकार-शास्त्रमें अिसी अर्थमें मिलते-जुलते अर्थमें अिसका प्रयोग हुआ है। वहाँ शब्द और अर्थके साथ-साथ रहनेके भाव (साहित्य)को 'काव्य' बताया गया है। परन्तु असा तो कोअी वाक्य हो नहीं सकता जिसमें शब्द और अर्थ साथ-साथ न रहते हों। अिसीलिये 'साहित्य' शब्दको विशिष्ट अर्थमें प्रयोग करनेके लिये अितना और जोड़ दिया गया है कि "रमणीयता अुत्पन्न करनेमें जब शब्द और अर्थ अेक दूसरेसे स्पर्द्धा करते हुअे साथ-साथ आगे बढ़ते रहें, तो असे 'परस्पर स्पर्द्धी' शब्द और अर्थका जो साथ-साथ रहना होगा वही साहित्य 'काव्य' कहा जा सकता है।" असा जान पड़ता है कि शुरू-शुरूमें यह शब्द काव्यकी परिभाषा बनानेके लिये ही व्यवहृत हुआ था और बादमें चलकर सभी रचनात्मक पुस्तकोंके अर्थमें व्यवहृत होने लगा। पुराने ज़मानेसे ही अिसे सुकुमार वस्तु समझा

जाता रहा है और अिसकी तुलनामें न्याय, व्याकरण आदि शास्त्रोंको 'कठिन' भाग माना जाता रहा है। कान्यकुब्जके राजाके दरबारमें प्रसिद्ध कवि श्रीहर्षको विरोधी पंडितने यही कहकर नीचा दिखाना चाहा था कि वे 'सुकुमार वस्तु'के ज्ञाता हैं। 'सुकुमार वस्तु'से मतलब साहित्यसे था। अुत्तरमें श्रीहर्षने गर्वपूर्वक कहा था कि मैं 'सुकुमार' और 'कठोर' दोनोंका जानकार हूँ।

§३. अूपर जिसे हमने 'रचनात्मक-साहित्य' कहा है और आगे जिसे संक्षेपमें 'साहित्य' कहते रहेंगे, वह सारी दुनियामें बड़े चावसे पढ़ा जाता है। प्रश्न हो सकता है कि अिस श्रेणीके साहित्यको लोग क्यों अितने आग्रहके साथ पढ़ते हैं। यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि अिसके अुत्तरके लिये हमें साहित्यको भी ठीक-ठीक समझनेका प्रयत्न करना होगा और पढ़नेवालेके मनको भी।

साहित्य मानव-जीवनसे सीधा अुत्पन्न होकर सीधे मानव-जीवनको प्रभावित करता है। साहित्य पढ़नेसे हम जीवनके साथ ताजा और घनिष्ठ संबंध स्थापित करते हैं। साहित्यमें अुन सारी बातोंका जीवन्त विवरण होता है जिसे मनुष्यने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है। जीवनके जो पहलू हमें नज़दीकसे और स्थायीरूपसे प्रभावित करते हैं अुनके विषयमें मनुष्यके अनुभवोंके समझनेका अेकमात्र साधन साहित्य है। वस्तुतः जैसा कि अेक पश्चिमी समालोचकने कहा है—'भाषाके माध्यमसे जीवनकी अभिव्यक्तिका नाम ही साहित्य है।' अिसलिये पश्चिमी पंडितोंमेंसे किसी-किसीने साहित्यको 'जीवनकी व्याख्या' कहा है। अिस कथनका अर्थ यह हुआ कि जीवनकी जहाँतक गति है वहाँतक साहित्यका क्षेत्र है। जीवनसे दूर हटा हुआ साहित्य अपना महत्व खो देता है।

§४. लेकिन साहित्य और जीवनका संबंध आये-दिन अिस प्रकारसे बताया जाता है कि यह बात फैशनका रूप धारण कर चुकी है। असलमें यह बात-की-बात नहीं बल्कि वास्तविक तथ्य है। अिसलिये अिसके अन्तर्निहित अर्थको हमें ठीक-ठीक समझ लेना चाहिये। 'साहित्य जीवनसे सीधे अुत्पन्न होता है' अिस वाक्यका अर्थ यह है कि साहित्य जीवनमें ही रहता है और अुसके लिखे या पढ़े जानेका कारण भी जीवनमें ही खोजना चाहिये। अिस कथनका और भी स्पष्ट अर्थ यह है कि साहित्यका विचार, अुसकी अच्छाअी या बुराअीका निर्णय, और अुसकी महत्ताकी जाँचके लिये हमें सब समय किसी शास्त्रके या किसी बड़े आदमीके वाक्यको अवलंब माननेकी ज़रूरत नहीं (यद्यपि यह बात अनावश्यक नहीं है)। यदि जीवन और साहित्यमें सचमुच सम्बन्ध है तो हमारे जीवनमें ही अुसके समझने और ग्रहण करनेकी शक्ति होनी चाहिये। वस्तुतः अैसा ही होता है।

हम साहित्यके किसी महान् ग्रंथको अिसलिये महान् नहीं कहते कि किसी व्यक्तिने अुसे महान् कह दिया है, बल्कि अिसलिये कि अुसके पढ़नेसे हम मानव-जीवनको निविड़-भावसे अनुभव करते हैं। या तो हम अुसमें अपनेको ही पाते हैं या अपने अिर्द-गिर्दके अनुभूत अर्थोंको गाढ़भावसे अनुभव करते हैं। पंडितोंने बताया है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अिसलिये वह जिस प्रकार क्रिया-कलापमें सामाजिक बना रहता है अुसी प्रकार विचारमें भी। अुसके अिस सामाजिकपनेका ही परिणाम है कि वहः—

(१) अपने-आपको नाना रूपोंमें अभिव्यक्त करना चाहता है, (२) अन्य-लोगोंके करने-धरनेमें रस लेता है; (३) अपने अिर्द-गिर्दकी वास्तविक दुनियाको समझना चाहता है, तथा (४) कल्पना-द्वारा अेक अैसी दुनियाका निर्माण करनेमें रस पाता है जो वास्तविक दुनियाके दोषोंसे रहित

हो। ये ही वे चार मूल मनोभाव हैं जो मनुष्यको साहित्यकी तथा अन्य अनेक प्रकारकी रचनाओंके लिये अुद्योगी बनाये रहते हैं। अिसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्यके जीवनमें ही वे अुपादान मौजूद हैं जो अुसे साहित्यकी सृष्टिके लिये प्रेरित करते हैं। साथ ही अिन्हीं मूल मनोभावोंका यह परिणाम है कि वह दूसरोंकी रचनाको देखने, सुनने और समझनेमें रस पाता है।

§५. हम किसी बातमें आनंद क्यों पाते हैं? हमारे देशके मनीषियोंने बताया है कि हम अूपरसे कितने भी खण्डरूप और ससीम क्यों न हों, भीतरसे निखिल जगत्के साथ 'अेक' हैं। हमने अूपर जो कुछ समझा है अुससे स्पष्ट है कि साहित्य हमें प्राणिमात्रके साथ अेक प्रकारकी आत्मीयताका अनुभव कराता है [दे० §१]। वस्तुतः साहित्यके द्वारा हम अपनी अुसी अेकता' का अनुभव करते हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अिस बातको बड़ी सरलताके साथ समझाया है। वे कहते हैं कि—

"हमारे आत्मामें अखण्ड अैक्यका आदर्श है। हम जो कुछ जानते हैं वह किसी-न-किसी अैक्य-सूत्रसे जानते हैं। कोअी भी जानकारी अपने-आपमें अेकान्त स्वतंत्र नहीं है। जहाँ कहीं भी पाने या जाननेमें अस्पष्टता दिखाअी देती है, वहीं मेरी समझमें कारण है,—'मिलाकर न जान सकना'। हमारे आत्मामें, ज्ञानमें और भावमें यह जो 'अेक' का विहार है वही 'अेक' जब लीलामय होता है, जब वह सृष्टिके द्वारा आनंद पाना चाहता है, तब वह अुस 'अेक' को बाहर सुस्पष्ट कर देना चाहता है। तब विषयको अुपलक्ष्य करके, अुपादानको आश्रय करके, अेक अखण्ड 'अेक' व्यक्त हो अुठता है। काव्यमें, गीतमें, शिल्प-कलामें, ग्रीक शिल्पीद्वारा रचित पूजापात्रमें, विचित्र रेखाके आवर्तनमें जब हम परिपूर्ण 'अेक'को चरम रूपमें देखते हैं, तब हमारी अन्तरात्माके 'अेक' के साथ बहिर्लोकके 'अेक'का मिलन होता है।

जो मनुष्य अरसिक है वह अिस चरम 'अेक'को नहीं देख पाता, वह केवल अुपादानकी ओरसे, केवल प्रयोजनकी ओरसे अिसका मूल्य आँका करता है। —

शरद् चंद, पवन मंद
विपिने वहल कुसुम-गंध
फुल्ल मल्लि मालति यूथि,
मत्त मधुप भोरनी। —

" यदि अिस काव्यमें विषय, भाव, कविता और छंदके निविड़ सम्मेलनसे 'अेक'का रूप पूर्ण होकर दिखाअी दे, यदि अुस 'अेक'का आविर्भाव ही चरम होकर हमारे चित्तपर अधिकार करे, यदि काव्य खण्ड-खण्ड होकर अुल्कावृष्टि-सी करता हुआ हमारे मनपर आघात न करे और यदि अैक्य-रसकी चरमताको अतिक्रम करके और कोअी अुद्देश्य अुग्र न हो अुठे, तभी हम अुस काव्यमें सृष्टिलीलाको स्वीकार करेंगे। गुलाबके फूलसे हम आनंद पाते हैं। वर्णमें, गंधमें, रूपमें, रेखामें अिस फूलके भीतर हम (अखण्ड) 'अेक' की सुषमा देखते हैं। अिसके भीतर हमारा आत्मारूपी 'अेक' अपनी आत्मीयता स्वीकार करता है, तब फिर अिसके और किसी मूल्यकी ज़रूरत नहीं होती।... गुलाबके फूलमें जो सुनिहित, सुषमायुक्त 'अैक्य' है, निखिल विश्वके अन्तरमें भी वही अैक्य है। समस्त (विश्वके) सुरके साथ अिस फूलके सुरका मेल है। निखिलने अिस सुषमाको अपना मानकर ग्रहण किया है। "

§६. अिस लंबे अुद्धरणका अर्थ यह है कि छोटी-से-छोटी वस्तुमें अुसकी विभिन्नता और क्षुद्रताके बावजूद भी अेक अैसा सत्य है जो सारी वस्तुओंमें समान रूपसे पाया जाता है। अुसीको रवीन्द्रनाथ 'अेक' कहते हैं।

जहाँ अिस 'अेक'के साथ किसी वस्तुका सामंजस्य है वहीं सौन्दर्य है और कला है। जहाँ सामंजस्य न होकर विरोध है, वहाँ स्वार्थ है, कुरूपता है और पीड़ा है। स्वयं रवीन्द्रनाथने ही रुपया कमानेका अुदाहरण देकर अिस बातको आसान करके समझाया है। वे लिखते हैं:—

"मैं जब रुपया कमाना चाहता हूँ तो मेरे रुपया कमानेकी नाना भाँतिकी चेष्टाओं और चिन्ताओंके भीतर भी अेक 'अेकता' वर्तमान रहती है। विचित्र प्रयासके भीतर केवल अेक ही लक्ष्यकी अेकता अर्थकामीको आनंद देती है। किन्तु यह अैक्य अपने अुद्देश्यमें ही खंडित है, निखिल सृष्टि-लीलासे युक्त नहीं है। पैसेका लोभी विश्वको टुकड़े-टुकड़े करके—झपट्टा मारकर—अपनी धनराशिको अिकट्ठा करता है। लोभीके हाथमें कामनाकी वह लालटेन होती है जो केवल अेक विशेष संकीर्ण स्थानपर अपने समस्त प्रकाशको 'संहृत' करती है। बाकी सभी स्थानोंसे अुसका असामंजस्य गहरे अंधकारके रूपमें घनीभूत हो अुठता है। अतअेव लोभके अिस संकीर्ण अैक्यके साथ सृष्टिके अैक्यका, रस-साहित्य और ललित कलाके अैक्यका संपूर्ण प्रभेद है। निखिलको छिन्न करनेसे लोभ होता है और निखिलको अेक करनेसे रस होता है। लखपती महाजन रुपयेकी थैली लेकर 'भेद' की घोषणा करता है, गुलाब 'निखिल' का दूत है, वह 'अेक' की वार्ता लेकर फूटता है। जो 'अेक' असीम है, वही गुलाबके नन्हे-से हृदयको परिपूर्ण करके विराजता है। कीट्स अपनी कवितामें 'निखिल-अेक' के साथ अेक छोटे-से ग्रीक पात्रकी अेकताकी बात बता गअे हैं; कह गअे हैं कि 'हे नीरव मूर्ति! तुम हमारे मनको व्याकुल करके समस्त चिन्ताको बाहर ले जाते हो, जैसा कि असीम ले जाया करता है।' क्योंकि अखण्ड 'अेककी' मूर्ति, किसी आकारमें भी क्यों न रहे, 'असीम'को ही प्रकाश करती है; अिसीलिये वह अनिर्वचनीय है। मन और वाक्य अुसका कोअी कूल-किनारा न पाकर लौट आया करते हैं।" ['विश्व-भारती पत्रिका', चैत्र—१९९९, पृ० ११०-१११]।

§७. अूपर-अूपरसे यह बात हमें कठिन या दुर्बोध लगेगी। हम आगे सदा अिस विषयको नाना भावसे समझनेका अवसर पाते रहेंगे। परन्तु साहित्यके विद्यार्थीमात्रको शुरूमें ही यह बात समझ लेनी चाहिये कि साहित्यकी साधना निखिल विश्वके साथ अेकत्व अनुभव करनेकी साधना है, जिससे वह किसी भी अंशमें कम नहीं है। जो साहित्य-नामधारी वस्तु लोभ और घृणापर आधारित है, वह साहित्य कहलानेके योग्य नहीं है। वह हमें विशुद्ध आनंद नहीं दे सकती।

आहार, निद्रा, भय आदि मनोभाव समस्त प्राणियोंमें समान हैं। मनुष्य जब अिनकी पूर्तिका प्रयत्न करता रहता है तो वह अपने अुस छोटे प्रयोजनमें अुलझा रहता है, जो पशुओंके समान ही है। बहुत प्राचीन कालसे अिन पशु-सामान्य प्रवृत्तियोंको मनुष्यने तिरस्कारके साथ देखा है। वह अिन तुच्छताओंसे अूपर अुठ सका है, यही अुसकी विशेषता है। जो बातें हमें अिन तुच्छताओंका दास बना देती हैं; या अिन तुच्छताओंको ही मनुष्यका असली रूप बताती हैं, वे मनुष्यके चित्तसे अुसके महत्वको, अुसके वैशिष्ट्यको और अुसके वास्तविक रूपको हटा देती हैं। वे लोभ और मोहका पाठ पढ़ाती हैं। साहित्य वे नहीं हो सकतीं, क्योंकि अुनकी शिक्षासे मनुष्य खंड की साधना करता है, विभेद और तुच्छताको बड़ा समझने लगता है और सारे विश्वके साथ अेकत्वकी अनुभूतिसे विरत हो जाता है।

२. साहित्यकार

§८. हम साहित्यकी कोअी भी पुस्तक अुठा लें—तीन बातें हमारे सामने अपने-आप अुपस्थित हो जायेंगी। प्रथम तो यह कि अुस पुस्तकका कोअी लेखक है जिसने संसारके कुछ व्यापारोंको अपने ढंगसे देखा, समझा और अनुभव किया है। दूसरी यह कि अुसने जो कुछ भी देखा, समझा और अनुभव किया है अुन्हीं बातोंको अिस पुस्तकमें कहा है। अर्थात् जिस प्रकार पुस्तकका कोअी वक्ता है अुसी प्रकार अुसका वक्तव्य भी है। तीसरी यह कि वक्ताने वक्तव्यको कहनेके लिये किसी विशेष ढंगको पसंद किया है और अुसी ढंगसे वह हमें सुना रहा है। अुदाहरणार्थ, वह अपनी बात कहानीके रूपमें कहना चाहता है, या पद्य-बद्ध करके कहना चाहता है, या दो या अधिक पात्रोंमें बातचीत करके कहना चाहता है या फिर सीधे युक्ति-तर्क देकर प्रतिपादन कर रहा है। ये तीन बातें हर पुस्तकमें रहती हैं। अगर हम अिन तीनोंको ठीक ढंगसे समझ लें तो आलोच्य पुस्तककी जांच आसानीसे हो सकती है। अेक चौथी बात भी है जो या तो लेखकके मनमें रहती है या वक्तव्य वस्तु स्वयं अुसकी आवश्यकता समझकर अपनी ओरसे तैयार कर लेती है। वह है लक्ष्यीभूत श्रोता या पाठक। अिस प्रकार किसी पुस्तककी विवेचना करते समय चार बातोंका विचार परम आवश्यक है—(१) कौन कह रहा है (लेखक), (२) क्या कह रहा है (वक्तव्य वस्तु), (३) कैसे कह रहा है (कारीगरी), और (४) किससे कह रहा है (लक्ष्यीभूत श्रोता या पाठक)।

§९. पहले लेखकका ही विचार किया जाय। साहित्य-ग्रंथके पढ़नेका प्रथम अर्थ होता है ग्रंथकारके साथ घनिष्ठ योग। शुरूमें ही कहा गया है कि साहित्य जीवनसे सीधे अुत्पन्न होता है। तो, जिस व्यक्तिके जीवनसे आलोच्य ग्रंथ निकला है, अुसके विषयमें जानकारी प्राप्त कर लेनेसे हमें अनेक सुविधाअें मिल जाती हैं। यदि हम अैसा शुरूमें ही कर लेंगे तो ग्रंथके अनेक अस्पष्ट अंशोंको समझ सकेंगे और ग्रंथका रस गाढ़-भावसे अनुभव कर सकेंगे।

अेक ही लेखक कअी पुस्तकें लिख सकता है; अैसा भी देखा गया है कि अिन पुस्तकोंमें परस्पर-विरोधी बातें भी रहती हैं, और कभी-कभी तो अेक ही ग्रंथमें परस्पर-विरोधी बातें मिल जाती हैं। वस्तुतः महान् लेखककी महान् रचना अुसके जीवनके विभिन्न अनुभवोंका जीवन्त रूप है। अेक पश्चिमी आलोचकने कहा है कि ग्रंथकारके लिखे सभी ग्रंथोंको अेक ही ग्रंथ मानकर आलोचना होनी चाहिये। तभी हम ग्रंथकारके वास्तविक रूपको समझ सकते हैं। आजकल यह प्रथा चल पड़ी है कि किसी ग्रंथकारकी रचनाओंके अध्ययनके लिये रचनाओंका काल-क्रमसे वर्गीकरण किया जाता है और ग्रंथकारके व्यक्तिगत जीवनके साथ अुन रचनाओंका संबंध स्थापित किया जाता है। अैसा करनेसे ग्रंथकारको समझनेमें आसानी होती है। पर अिस ढंगमें कुछ दोष भी है। आगे हम अिसपर विचार करेंगे।

§१०. ग्रंथकारके अध्ययनके लिये चार बातोंकी जानकारी आवश्यक है—(१) वह किस कालमें पैदा हुआ; (२) वह किस जाति और समाजमें पैदा हुआ; (३) अुसके समसामयिक और पूर्ववर्ती अन्य प्रसिद्ध ग्रंथकार कौन-कौन थे; और अुनसे अुसका कोअी संबंध था या नहीं; तथा (४) अुसका व्यक्तिगत जीवन क्या और कैसा था?

(१) प्रथम बातकी जानकारी भिसलिये आवश्यक है कि प्रत्येक कालका भेक अपना विशेष गुण है। जिस युगमें कवि पैदा होता है अुस युगकी राजनीतिक, सांस्कृतिक और अन्य परिस्थितियाँ अुस युगके प्रत्येक लेखकमें भेक सामान्य गुण भर देती हैं। हिंदीमें सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दीमें जो लेखक हुभे अुन सबमें रीति-ग्रंथोंके भेक खास पहलूका प्रभाव है। अुस युगमें मुसलिम-शासन पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित हो चुका था और कितने ही मुसलिम शिष्टाचार समाजमें घुल-मिलकर भारतीय हो चुके थे। कवि तात्कालिक समाजकी रीति-नीतिसे प्रभावित रहता था।

कविके काव्यके विषयमें जिज्ञासाका अर्थ यह होता है कि हम अुस भैतिहासिक शक्तिकी जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं जो मनुष्य-समाजको प्रत्येक युगमें विशेष रूप दे रही है। कालिदास जिस युगमें पैदा हुभे थे अुस युगकी मूर्ति, स्थापत्य, धर्म और राजनीति आदिको जाने बिना हम न तो कालिदासको ठीक-ठीक समझ ही सकते हैं और न अुसका महत्त्व निर्णय कर सकते हैं। कालिदासके ग्रंथमें कालिदासका युग प्रतिफलित है। अुस युगके सभी लेखकोंमें अुस युगकी छाप पाभी जायगी। कालिदास जिस युगमें पैदा हुभे थे अुस युगमें भारतवर्ष ब्राह्मणधर्मानुमोदित पुनर्जन्म, कर्मवाद और कर्मफल प्राप्तिकी व्यवस्थाको मानता था। भिसीलिये सब कुछको भेक सामंजस्यपूर्ण व्यवस्थाके भीतरसे देखना अुनके लिये स्वाभाविक और सहज था। जो कुछ घट रहा है अुसका भेक अुचित कारण है—भिस विश्वासने अुस युगके साहित्यकारोंमें भेक सन्तोषका भाव भर दिया था। और कालि-दासके समान ही अुस युगका प्रत्येक कवि और नाटककार संसारको भेक सामंजस्यपूर्ण विधान मानता था। अुस युगके किसी कविमें बीसवीं शताब्दीके आधुनिक साहित्यिकोंकी भाँति समाजकी व्यवस्थाके प्रति तीव्र असन्तोषका भाव नहीं पाया जा सकता।

(२) दूसरी बात अर्थात् लेखकके समाज और जातिकी जानकारी भी आवश्यक है। क्योंकि :—

(क) प्रत्येक जातिका अपना अेक जातीय गुण होता है जो अुस जातिके व्यक्तियोंमें प्रायः सामान्य रूपसे पाया जाता है। प्राचीन कालसे ही भारतवर्षमें नाना संस्कृतियोंके संघर्ष और समन्वयसे अेक विशेष प्रकारकी विचार-पद्धति, विश्वास और रीति-नीति बन गयी है। अुपनिषद्-कालके बाद जब लौकिक संस्कृतका साहित्य भारतवर्षमें बनने लगा अुस समयसे लेकर हजारों वर्ष बादतक अिस देशमें वेदकी प्रामाणिकतामें विश्वास, अध्यात्मवाद, पुनर्जन्मवाद आदिका बोलबाला रहा। मैक्समूलरने अिस युगके भारतवासीके बारेमें लिखा है कि:—"अुससे अिस सान्त जगत्की बात कहो, वह कहेगा कि अनन्तके बिना सान्त जगत् निरर्थक है, असंभव है; अुससे मृत्युकी बात कहो, वह तुरन्त अुसे जन्मकी पूर्वावस्था कह देगा, अुससे कालकी बात कहो वह अिसे सनातन परम तत्वकी छाया बता देगा। हमारे (यूरोपियनोंके) निकट अिन्द्रियाँ साधन हैं, शस्त्र हैं, ज्ञानप्राप्तिके शक्तिशाली अिन्जिन हैं; किन्तु अुसके निकट वे अगर सचमुच धोखा देनेवाले नहीं तो कम-से-कम सदैव ज़बर्दस्त बन्धन तो अवश्य हैं, वे आत्माकी स्वरूपोपलब्धिमें बाधक हैं। हमारे लिये यह पृथ्वी, यह आकाश, यह जो कुछ हम देख, छू और सुन सकते हैं, निश्चित हैं; हम समझते हैं, यहीं हमारा घर है, यहीं हमें कर्तव्य करना है, यहीं हमें सुख-सुविधा प्राप्त है, लेकिन अुसके लिये यह पृथ्वी अेक अैसी चीज़ है जो किसी समय थी ही नहीं और अैसा भी अेक समय आयेगा जब यह नहीं रहेगी; यह जीवन अेक छोटा-सा सपना है जिससे शीघ्र ही हमारा छुटकारा हो जायगा, हम जाग जायेंगे। जो वस्तु औरोंके लिये नितान्त सत्य है अुससे अधिक असत्य अुसके निकट और कुछ है ही नहीं और जहाँ तक अुसके घरका संबंध है वह निश्चित जानता है कि

वह चाहे जहाँ कहीं भी हो, अिस दुनियामें नहीं है।" भारतवर्षका यह परिचय आदिकवि वाल्मीकिसे लेकर रवीन्द्रनाथतक ज्यों-का-त्यों चला आया है। अिस देशका घोर-से-घोर विषयी कवि भी अिस दुनियासे परे अेक अचिन्त्य अव्यक्त सत्ताकी ओर अिशारा किये बिना नहीं रहता। परन्तुः—

(ख) सारी भारतीय जाति अेक ही सतहपर सदा नहीं रही है, यद्यपि समूची भारतीय जातिके भीतर अुक्त प्रकारके सामान्य विश्वास किसी मात्रामें सदा पाये जाते रहे हैं। आर्थिक और राजनीतिक कारणोंसे कोअी अुपजाति सुविधा भोग करती है, कोअी दूसरी अुपजाति औरोंकी सेवा करती है और कोअी तीसरी श्रेणी अुपेक्षित और अपमानित ही रहती है। भारत-वर्षमें धार्मिक कारणोंसे भी अैसा हुआ है। अिन नाना स्तरोंमें शिक्षा, संस्कार और संवेदन अेक ही तरहके नहीं होते। मध्य युगमें आचार्य रामानंदकी दीक्षा भिन्न-भिन्न स्तरके कवियोंमें अेकदम अलग-अलग रूपमें व्यक्त हुअी है। हालके शोधोंसे पता चलता है कि कबीरदास अेक अैसी जातिमें पैदा हुअे थे जो नाथ-योगियोंसे भ्रष्ट होकर गृहस्थ बनी थी और ब्राह्मण-व्यवस्थाकी क़ायल नहीं थी। अुस जातिमें योगियोंके संस्कार पूरी मात्रामें विद्यमान थे। फिर बादमें वह धीरे-धीरे मुसलमान भी होने लगी थी, अिसलिये मुसलमानी संस्कार भी अुसमें आने लगे थे। फिर भी सब मिलाकर अुस जातिकी सामाजिक मर्यादा निचले स्तरकी थी। अिसी समाजके संस्कारोंके कारण आचार्य रामानंद-द्वारा प्रचारित भक्ति कबीरमें अेक अैसे पौधेके रूपमें अंकुरित हुअी जो अपनी मिसाल आप ही है। कबीर अेक ही साथ योगियोंका अक्खड़पन, निचले स्तरमें वर्तमान छोटी समझी जाने-वाली जातियोंका तीव्र असन्तोष-भाव, मुसलमानी अुत्साह और भक्तगणकी निरीहताके सम्मिलित रूप थे।

अुधर दूसरी ओर तुलसीदास हुअे जो रामानंदके साक्षात् शिष्य तो नहीं थे पर अुनकी शिष्य-परम्परामें ही पड़ते थे। वे ब्राह्मण-वंशमें किन्तु गरीब घरमें पैदा हुअे थे। अुस श्रेणीमें योग-मार्गका नहीं बल्कि पौराणिक मतका प्रचार था। तुलसीदास कबीरसे बहुत भिन्न हैं। अितना अवश्य याद रखना चाहिये कि अिन दो महान् साहित्यकारोंकी भिन्नताका कारण अुनका अपना व्यक्तित्व भी था (जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे)। परन्तु अिस बातमें कोअी सन्देह नहीं कि दोनोंको अुत्पन्न करनेवाली भिन्न-भिन्न सामाजिक भिन्नता भी अिनकी भिन्नताके लिये पूर्णरूपसे जिम्मेवार है। अिस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिस तरह यह जानना परम आवश्यक है कि ग्रंथकार किस देश या जातिमें पैदा हुआ, अुसी प्रकार यह जानना भी ज़रूरी है कि वह समाजके किस स्तरसे आया था, अिन दोनों बातोंको अेक शब्दमें कविका 'जातीय रूप' कह सकते हैं।

(३) कविके पूर्ववर्ती और समसामयिक ग्रंथकारोंका जानना भी आवश्यक है। अुनकी परस्पर तुलना करके हम आलोच्य कवि या लेखके काल, समाज और देशकी बात ठीक-ठीक समझ सकते हैं कि कविका अपना व्यक्तित्व क्या था। बिहारी और मतिरामकी सतसअियोंमें बहुत-सी बातें अेक ही जैसी हैं। नायिकाओंका वही रूप, वही अलंकार-भंगिमा, वही प्रेम और विरह-संबंधी अुक्तियाँ, अलंकारोंका वही कौशल, गुणोंकी वैसी ही योजना और दोषोंके वैसे ही वर्जनका प्रयत्न दोनों ही कवियोंमें मिलेगा। दोनोंकी तुलना करनेसे हम आसानीसे अुस युगकी रुचि, संस्कार, रीति-रस्म, शिष्टाचार और सामाजिकता आदिका पता लगा सकते हैं। और फिर भी यह समझनेमें देर नहीं लगेगी कि बिहारी हाव-भाव और बिब्बोक-विलासोंमें अधिक रस पाते हैं और अंगज अलंकारोंपर विशेष ज़ोर देते हैं, जब कि मतिराम अयत्नज अलंकारोंमें अधिक रस लेते हैं। [दे० §३०]

कविको पूर्ववर्ती और समसामयिक कवियोंकी तुलनामें रखकर देखनेका अर्थ है कि हम मानते हैं कि संसारमें कोअी घटना अपने-आपमें स्वतंत्र नहीं है, पूर्ववर्ती और पार्श्ववर्ती घटनाअें वर्तमान घटनाओंको रूप देती रहती हैं, अिसलिये जिस किसी रचना या वक्तव्य वस्तुका हमें स्वरूप-निर्णय करना हो अुसे पूर्ववर्ती और पार्श्ववर्ती घटनाओंकी अपेक्षामें देखना चाहिये। भास कविका चारुदत्त नाटक, शूद्रक कविके मृच्छकटिकसे पुराना है। चारुदत्त ही मृच्छकटिकका आधार है। दोनोंमें केवल कथानकका ही साम्य नहीं है कअी श्लोकतक अेक ही पाये गये हैं। फिर भी शूद्रकका मृच्छकटिक भासके चारुदत्तसे विशेष है। यदि यह सिद्ध हो जाता कि चारुदत्त मृच्छकटिकके बादकी रचना है तो अुसका कोअी महत्व नहीं रहता है, पर चूँकि वह पूर्ववर्ती रचना है अिसालिये अुसका महत्व बहुत अधिक है। दोनों नाटकोंको साथ पढ़नेवाला व्यक्ति शूद्रकके व्यक्तित्व और महत्वको ठीक-ठीक समझ सकता है।

(४) कविका व्यक्तिगत जीवन भी साहित्यके विद्यार्थीके लिये बहुत आवश्यक है। भारतवर्षमें अिस ओर काफी अुदासीनता दिखाअी गअी है। अपने महान् ग्रंथकारोंमेंसे बहुत कमके व्यक्तिगत जीवनकी हमें ठीक-ठीक जानकारी है। अुत्सुक पाठक-मंडलीको किम्बदन्तियोंपर सन्तोष करना पड़ता है। अुधर यूरोपमें कविके जीवनकी प्रत्येक छोटी-छोटी घटनाओंको लिपि-बद्ध करने और आलोचना करनेकी परिपाटी पागलपनकी सीमातक पहुँच चुकी है। अिस देशमें भी यह हवा बहने लगी है। ग्रंथकारोंके खाँसने-डकारने तककी खबर लेनेके लिये पन्ने-के-पन्ने रँगे जाने लगे हैं। जिसे भी सस्ते तार-पर साहित्यमें नाम कमानेकी अिच्छा है वही किसी बड़े कविकी पैदाअिशका कोअी नया गाँव खोज निकालता है, अुसके ससुरालकी ढही दीवारोंका पता

बता देता है, अुसकी भौजाअीकी बहूके भतीजेका हस्तलेख निकाल लाता है और पत्रों और पुस्तकोंमें बहस छिड़ जाती है। अैसी बात साहित्यके समझनेमें बाधक ही होगी।

यहाँ यह कह रखना ज़रूरी है कि बड़े-बड़े ग्रंथकारोंके जीवनमें दो प्रकारकी दिलचस्पी पाअी जाती है, अैतिहासिक और साहित्यिक। हमारा प्रधान आलोच्य साहित्यिक दिलचस्पी है। हमें कविके साहित्यके पढ़नेके लिये अुसकी जीवनकी जानकारी प्राप्त करनी होती है। यदि हम बेकार बातोंमें समय बर्बाद करने लगेंगे तो यह बात हमारे साहित्यिक अध्ययनमें बाधक हीं साबित होगी। परन्तु यदि हम कविके जीवनसे परिचित हों, अुसके अनु-भवोंके चढ़ाव-अुतारके जानकार हों तो बहुत-सी साहित्यिक अुलझनें सुलझ जाती हैं। वस्तुतः कोअी भी महान् ग्रंथ अपने लेखकके दिमागसे, हृदयसे और रक्त-मांससे बना होता है।

महान् ग्रंथकार अपने अनुभवसे सजीव सृष्टि करता है। वह कल्पना और बुद्धिके सहारे गढ़े हुअे जीवोंमें आस्था नहीं रखता। स्वर्गीय प्रेमचंदजीने कहा था कि "कल्पनासे गढ़े हुअे आदमियोंमें हमारा विश्वास नहीं है। अुनके कार्यों और विचारोंसे हम प्रभावित नहीं होते। हमें अिसका निश्चय हो जाना चाहिये कि लेखकने जो सृष्टि की है वह प्रत्यक्ष अनुभवोंके आधारपर की है, या अपने पात्रोंकी ज़बानसे वह खुद बोल रहा है।"

किसी रचनाका संपूर्ण आनंद पानेके लिये रचयिताके साथ हमारा घनिष्ठ परिचय और सहानुभूति मनुष्यताके नाते भी आवश्यक है। हमें आलोचक होनेके पहले आलोच्य ग्रंथकारका विश्वासपरायण मित्र बनना चाहिये तभी हम अुसके वक्तव्यके अुचित श्रोता हो सकेंगे; क्योंकि अुस

हालतमें ही अुसके व्यक्तिगत सुख-दुःखके साथ गंभीर सहानुभूतिका भाव रख सकते हैं। सूरदास, तुलसीदास, रसखान और घनआनंद आदि कवियोंके बारेमें जो किम्बदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं अुनसे सिद्ध होता है कि जीवनकी छोटी-छोटी घटनाअें भी कभी-कभी महान् पुरुषोंको अिस प्रकारका झटका देती हैं कि अुससे अुनके जीवनकी दिशा ही बदल जाती है। कविका जीवन अुसकी कृतियोंके समझनेका प्रधान सहायक है।

§११. ग्रंथकारकी शैली अुसके व्यक्तित्वका ही अंग है। आधुनिक साहित्यके पारखी पंडितोंने साहित्यका विश्लेषण करके देखा है कि अेक लेखककी रचना दूसरे लेखककी रचनासे तीन कारणोंसे भिन्न हो जाया करती हैः—

(१) पहला कारण तो यह है कि अेक व्यक्तिका स्वभाव, संस्कार और शिक्षण दूसरेसे कभी हू-ब-हू नहीं मिलता। फलतः अेक व्यक्ति सदा दूसरेसे भिन्न हुआ करता है। और अिसलिये अेक व्यक्तिकी रचना स्वभावतः ही दूसरेसे भिन्न हो जाया करती है। अुसकी शैली, जैसा कि अंग्रेज कवि पोपने कहा था, "अुसके विचारोंकी पोशाक" हुआ करती है, पर केवल "पोशाक" कहना अुसे ठीक-ठीक कहना नहीं हुआ। अिसलिये सुप्रसिद्ध मनीषी कारलायलने अुक्त वक्तव्यका संशोधन करते हुअे कहा था कि "शैली लेखकके विचारोंकी पोशाक नहीं है बल्कि चमड़ा है"। वह मँगनी नहीं माँगी जा सकती, अुधार भी नहीं दी जा सकती। साधारण सहृदय भी किसी व्यक्तिकी रचनाको देखकर कह सकता है कि अैसी रचना तो अमुक व्यक्तिकी ही हो सकती है। प्रसाद और महावीरप्रसाद द्विवेदीके गद्य दूरसे ही अपने लेखकका नाम कह देंगे। अिस बातको शैलीका व्यक्तिगत पहलू कह सकते हैं। पर व्यक्तिगत पहलू ही शैलीका सब-कुछ नहीं है। अुसका अेक दूसरा महत्वपूर्ण अंग भी है।

(२) अेक खास युगके लेखक अेक ढंगकी चीज़ लिखते हैं। बिहारीका जन्म यदि आज हुआ होता तो वे सतसअीकी शैलीमें अपना वक्तव्य नहीं अुपस्थित करते। अुन्हें प्रेम और सौंदर्यकी प्रेरणा भी अन्य

प्रकारसे प्राप्त होती। लेखककी शैलीपर समयका प्रभाव अमिट रूपसे पड़ता है। परन्तु भिस दूसरे पहलूके कारण शैलीका पूर्वकथित व्यक्तिगत पहलू मद्धिम नहीं पड़ता। अगर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी बीसवीं सदीमें पैदा हुअे होते तो कविता तो शायद लिखते ही नहीं और लेख भी दूसरे किस्मके लिखते। यह बात निश्चित है, परन्तु जितना निश्चित यह है अुतना ही निश्चित यह भी है कि भिनका व्यक्तिगत गुण अर्थात् विचारोंकी परुष स्पष्टता, भाषाकी सफाभी और वक्तव्यके प्रति कठोर भीमानदारी अुस समय भी होती।

(३) शैलीका तीसरा महत्वपूर्ण अंग अुसका शास्त्रीय अुपस्थापन है। भिसमें वक्तव्य वस्तुके भावावेशमूलक और सामंजस्य-बोधक अपकरण शामिल हैं। अर्थात्:—

[क] अुपयुक्त शब्दोंका अुपयुक्त व्यवहार, विचारोंके अनुकूल वाक्योंको रूप ग्रहण करानेकी क्षमता या लचीलापन, और औचित्य-ज्ञान;

[ख] वक्तव्य वस्तुको हृदयंगम करानेके लिये ज्ञानको बढ़ा-चढ़ाकर कहना ही नहीं बल्कि पाठकको आकृष्ट करनेकी अनन्य-साधारण क्षमता; और

[ग] विविध शास्त्रीय तत्वोंका अुचित सामंजस्य।

शास्त्रकार लोग भिन बातोंको काव्यगुणोंके अन्तर्गत मानते हैं। यहाँ यह कह रखना आवश्यक है कि 'अुत्तम और साफ़ शैली' लेखकका अेक प्रधान गुण होनेपर भी केवल अुसीके बलपर कोभी लेखक महान् नहीं हो जाता। किसीने किसी विषयको कैसे लिखा है, यह जाननेके पहले यह जानना आवश्यक है कि अुसने 'क्या लिखा' है। यदि वक्तव्य वस्तुमें सार है तो वह जिस किसी ढंगसे भी क्यों न लिखा गया हो, ग्रहणीय हो जाता है। समय-समयपर कोभी-कोभी लेखक अपनी शैलीके बलपर भी साहित्यमें श्रेष्ठ स्थान-

पर अधिकार करते देखे गअे हैं। पर यह नियम नहीं, अपवाद है। महावीर-प्रसाद द्विवेदी अैसे ही अपवाद थे। वे अेक अैसे संक्रांतिकालमें अुत्पन्न हुअे जिसमें भाषाकी निर्मम सफाअी प्रधान गुण हो गअी थी। अुनसे कम परुष, कम बुद्धिवृत्तिक और अधिक भावावेशी व्यक्तिका नेतृत्व मिला होता तो सक्रांतिकालीन भाषामें अेक अैसा ढीलापन आ गया होता जिसके सुधारनेके लिये हम अब भी किसी अवतारी पुरुषकी बाट जोहते होते। अिस प्रकार शैली भी कभी-कभी साहित्यमें प्रधान स्थान ग्रहण कर लेती है।

§१२. ग्रंथकारके व्यक्तित्वका थोड़ा और भी विचार कर लिया जाय। आधुनिक विचारकोंने ग्रन्थकारका अध्ययन प्राणि-जगत्की विशाल पटभूमिका-पर रखकर किया है। ग्रन्थकार मनुष्य है, मनुष्य जीव। संसारमें जितने भी जीव हैं वे सभी अेक विकासके प्रवाहमें होकर आये हैं। प्रत्येक नअी पीढ़ी पुरानी पीढ़ीके गुण-दोषोंको लेकर पैदा होती है और पारिपार्श्विक परिस्थितियोंके कारण नअी शारीरिक या मानसिक परिस्थितियोंको प्राप्त करती है। मनुष्य अिसका अपवाद नहीं हो सकता। अुसके शरीर और मन भी न तो पूर्ववर्ती पीढ़ियोंके गुण-दोषसे मुक्त हो सकते हैं और न पारिपार्श्विक परिस्थितियोंके प्रभावसे बच ही सकते हैं। अिसका अर्थ यह है कि कालिदास अेक खास जाति और खास कालमें ही हो सकते थे। अेस्किमो जातिके बच्चेको चाहे जितनी भी संस्कृत रटा दीजिये वह कालिदास नहीं बन सकता है और न अिस युगका बड़ी-से-बड़ी शक्तिवाला संस्कृतज्ञ ही कालिदास-सा हो सकता है। कालिदास अुसी समयमें, अुसी परिस्थितिमें और अुसी जातिमें हो सकते थे जिसमें हुअे थे।

न दो व्यक्तियोंके सोचनेका रास्ता अेक है न सोचनेकी वस्तु ही अेक है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी समालोचक टेनने कहा था कि किसी भी व्यक्तिका निर्माण तीन निर्वैयक्तिक अुपादानोंसे होता है :—

(१) अुसकी वंश-परंपरा;

(२) अुसकी पारिपार्श्विक परिस्थिति; और

(३) अुसके युगकी विचार-धारा और विश्वास।

अिसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति जैसा है वैसा ही अुसे होना था, वह अपनी अिच्छासे अपनेको और अपने अिर्द-गिर्दकी परिस्थितिको बदल नहीं सकता। अिस विचारमें आंशिक सत्य अवश्य है पर अिसे संपूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता।

§१३. वस्तुतः परिस्थितियोंपर विजय पानेवाले मनुष्योंने ही प्रत्येक युगमें संसारको आगे बढ़ाया है। जातियोंका अितिहास व्यक्तियोंका अितिहास है। महापुरुष अेक अपूर्व शक्ति लेकर आते हैं और देशका नक्शा बदल देते हैं। क्रामवेल न होता तो अिंग्लैण्डका अितिहास और तरहसे लिखा गया होता। नेपोलियन न हुआ होता तो फ्रांसकी कहानी और ही तरहकी होती। अैसा देखा गया है कि अेक-अेक शक्तिशाली महापुरुष जातिको अेक खास दिशामें अग्रसर करते समय रास्तेमें ही चल बसा और वह जाति अपने समस्त जातिगत तथा अैतिहासिक परम्पराओं और अनुकूल पारिपार्श्विक परिस्थितियोंके बावजूद भी अुभय-विभ्रष्ट छिन्न मेघ-खण्डकी भाँति विलीन हो गअी!

महापुरुष ही जातियोंको बनाते हैं। वे देशको विशेष दिशाकी ओर मोड़ देते हैं, साहित्यके स्रष्टा और विज्ञानके विधाता होते हैं। कबीरदास योगियोंकी अक्खड़ता, भक्तोंकी निरीहता और भारतीय साधकोंकी सामान्य विशेषता आध्यात्मिक दृष्टिके साथ ही अपना अेक मस्ताना व्यक्तित्व लेकर पैदा हुअे थे। सब कुछको छोड़कर चल देनेकी घरफूँक मस्ती और फक्कड़ाना लापरवाहीने कबीरदासको भारतीय साहित्यका सबसे आकर्षक महापुरुष बना दिया है। अपने अिसी अनन्य-साधारण व्यक्तित्वके कारण कबीरदास नवयुगकी सृष्टि कर सके थे। कौन कह सकता है कि तुलसीदास केवल परिस्थितियोंकी अुपज थे और वे न भी होते तो क्या किसी क. ख. ग. ने वैसा ही राम-चरितमानस लिख दिया होता? वस्तुतः ग्रंथकार केवल परिस्थितियोंकी ही देन नहीं है, अुसका व्यक्तित्व वह महत्त्वपूर्ण वस्तु है जो समाजमें नया प्राणदान करती है और परिस्थितियोंको अपनी अभीष्ट दिशामें मोड़ देती है।

§१४. अब तकके वक्तव्यको कबीरके अुदाहरणसे अिस प्रकार समझा जायः—

कबीरदास

.	कालगत वैशिष्ट्य	भाषा और धर्मकी लोकाभिमुखता, दो धर्म-संस्कृतियोंका संघर्ष, हिंदुओंका सांस्कृतिक अुतार, अीश्वरपर अविचलित विश्वास, योग और तंत्र-प्रभाव अित्यादि।
२.	देशगत वैशिष्ट्य	
	(१) भारतीयता	अध्यात्मिकता, पुनर्जन्म, नामजप, गुरुवाद, कर्मफलवाद।
	(२) योग-प्रभाव	समाधि, प्राणायाम, काया-साधनाकी विविध बातें।
	(३) निचला सामाजिक स्तर	जातिगत वैषम्यकी तीव्र अनुभूति, समाज-व्यवस्थापर कठोर आक्रमण।
	(४) भक्त-प्रभाव	निरीहता, नम्रता, प्रेम।
	(५) मुसलमानी प्रभाव	बेधड़क खंडन, हीनता-ग्रंथिका अभाव, सामाजिक समतामें विश्वास।
३.	पूर्ववर्ती और समसामयिक	
	(१) पूर्ववर्ती	नाथपंथी और सहजयानियोंकी अक्खड़ता, आक्रमणवृत्ति, पहेलियोंकी भाषा।
	(२) समसामयिक	सूफीमत, मुल्लों और पंडितोंका बाह्याचार, निरंजनपंथसे साम्य आदि।
४.	जीवन	जुलाहेका काम, गरीबी, गृहस्थ-धर्म।
५.	व्यक्तित्व	फक्कड़, मस्त, आत्मविश्वासी, निरीह, बेपरवाह, दृढ़।

§१५. लेखकका अिस प्रकार अध्ययन हम अिसालिये करते हैं कि अुसने जो कुछ लिखा है अुसे ठीक-ठीक समझ सकें और अुस वक्तव्यका संपूर्ण आनंद ग्रहण कर सकें। अिसलिये प्रधान बात तो वह वक्तव्य ही है. जिसके लिये लेखकके व्यक्तिगत जीवनका अध्ययन आवश्यक साधन समझते हैं। वस्तुतः लेखकका वक्तव्य साहित्यका प्रधान विवेच्य है। अगर अुसके पास कहने योग्य कोअी वस्तु है और अुस वक्तव्यमें नवीनता, ताज़गी और सार है, तो अन्यान्य सारी बातें गौण हो जाती हैं। प्रतिभाशाली लेखक नये-नये साहित्यांगों और नये-नये साहित्यिक सम्प्रदायोंको जन्म दिया करते हैं। कम शक्तिशाली लेखक अुनका अनुकरण करके रूढ़ि-पालन किया करते हैं।

लेखकके वक्तव्यका रसास्वादन कराना ही साहित्यिक समालोचकका कर्तव्य है। अितना यहाँ अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि लेखककी वक्तव्य-वस्तु सब समय कोअी नअी सूचना या तर्क-युक्ति नहीं होती। दुनियाकी दृष्टिसे अुसका वाच्यार्थ [दे० § ३८] कभी-कभी नितान्त मामूली वस्तु हो सकती है। पर अूपर-अूपरसे दीखनेवाले अर्थ असलमें महाकविकी वाणीको किसी बड़े सत्यकी ओर अिशारा करनेके अुद्देश्यसे ही प्रयुक्त होते हैं [दे० § ४१]। अिस प्रकार वक्तव्य-वस्तुका रसास्वादन कराना ही साहित्य-समालोचकका मुख्य कर्तव्य है, फिर भी अिसके अतिरिक्त और अुद्देश्योंसे भी साहित्यका अध्ययन किया जाता है। हम संक्षेपमें अुसीका विवरण अुपस्थित करने जा रहे हैं।

३. जातीय (राष्ट्रीय) साहित्य

§१६. समूची जाति (राष्ट्र) भी अेक व्यक्ति मनुष्यकी भाँति है। जिस प्रकार व्यक्ति-मनुष्य-कभी सोता है, कभी जागता है, कभी सोचता-विचारता है, कभी आनंदके तराने छेड़ देता है अुसी प्रकार सारी जाति (राष्ट्र) भी अपने जीवनमें भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमेंसे गुजरती है। जिस प्रकार किसी रवीन्द्रनाथके विचार जाननेके लिये हम यह नहीं पूछते कि वे सपनेमें क्या बड़बड़ाते थे, या अपने बच्चेको क्या कहकर डाँट रहे थे, या छुटपनमें तोतली बोलीमें कौन-सा शुद्ध या अशुद्ध अुच्चारण कर रहे थे—यद्यपि मनुष्य रवीन्द्रनाथको निविड़भावसे अनुभव करनेके लिये भिन बातोंके प्रति हमारी जिज्ञासा अुचित है—परन्तु किसी खास विषयपर अुनके विचारकी जिज्ञासाके समय हम भिन बातोंको नहीं जानना चाहते बल्कि अुनकी प्रौढ़-विचारधारा, नाप-तौलकर लिखे हुअे वक्तव्य और सँवार-बनाकर कहे हुअे वाक्योंका अध्ययन करते हैं। ठीक वही बात जातिके विचारोंके बारेमें भी सत्य है।

यदि हमसे कोअी पूछे कि भारतीय जातिने क्या सोचा-विचारा है, अुसकी बहुमूल्य चिन्ताराशि क्या है, तो हम अुसे अुस संपूर्ण साहित्यके अुत्तम ग्रंथोंका निचोड़ सुनायेंगे जो वैदिक ऋषिसे लेकर प्रेमचंदतक महान् विचारकोंने रचा है।

महान् विचारक जातिकी चिन्ताशील अवस्थाके द्योतक हैं। अिसी-लिये किसी ग्रंथकारके ग्रंथ-विशेषको हम केवल अुसीतक सीमित रखकर अध्ययन नहीं करते बल्कि अुसे समूचे भारतीय साहित्यरूपी विराट् ग्रंथके अेक अध्यायके रूपमें भी देखते हैं। कालिदास और तुलसीदास भारतीय मनीषाके दो भिन्न तहोंके परिचायक हैं।

अिसीलिये जब हम किसी साहित्यके अितिहासको पढ़ने बैठते हैं तो वस्तुतः अुस जातिकी संपूर्ण चिन्ताराशि, अनुभूति-परम्परा और संवेदन-शीलताका परिचय पाना चाहते हैं। कालिदास, भवभूति, तुलसीदास और बिहारी परस्पर जितने भिन्न भी क्यों न हों, वे वस्तुतः संपूर्ण भारतीय जाति (राष्ट्र) की भिन्न अवस्था और अनुभूति-परंपराके परिचायक हैं।

§१७. (क) हमने अूपर देखा कि ग्रंथकारके अध्ययनके लिये अुसके कालकी जानकारी आवश्यक है। परन्तु विरोधाभास यह है कि बिना ग्रंथकारोंके हम विभिन्न काल-धर्मकी जानकारी प्राप्त ही नहीं कर सकते। गुप्त-कालीन ग्रंथोंके आधारपर ही मुख्यतया हम गुप्त-कालको समझ सकते हैं। अिसीलिये जातिके भिन्न कालकी रीति-नीति, आचार-विचार, वेष-भूषा, ज्ञान-विज्ञान, धर्म-कर्म समझनेके लिये भी साहित्यका अध्ययन करते हैं। अैसा करके हम अुस युगके प्राचीन मनुष्यको तो आमने-सामने पाते ही हैं अपने-आपको भी ठीक-ठीक समझते हैं।

हम पहले ही देख चुके हैं कि साहित्यकी रचना और अुसके अध्ययन दोनों ही कार्योंके लिये मूल मनोभाव हमें बराबर सचेष्ट करते रहते हैं। कालिदासके ग्रंथोंसे हम जानते हैं कि—अुन दिनों नागरिक लोग किस बातमें रस पाया करते थे? नगरकी सुंदरियाँ कैसा शृंगार करती थीं? प्रकृतिकी किन वस्तुओंसे कौन-सा सौंदर्य-वर्धक सामग्रियाँ संग्रह की जाती थीं? राजपुरुष कैसे होते थे? राजा और प्रजाका संबंध कैसा था? और अुस समयके सामाजिक लोग किस प्रकार नाच-गान, अुत्सव आदिका आनंद लेते थे? कालिदास हमारे सामने अपने ज़मानेके स्त्री-पुरुषको प्रत्यक्ष अुपस्थित कर देते हैं। हम अुनके सुख-दुःख, आनंद-मंगल और आचार-विचारको निविड़भावसे अनुभव करते हैं। कालिदासके सरल ग्रंथोंमें अुस युगको हम जीवन्त रूपमें

पाते हैं अुतने जीवित रूपमें हम अुस युगके किसी राजकीय विवरण-पुस्तिका (जो कदाचित् कहींसे मिल जाय) में नहीं पा सकते ।

(ख) जातिका ठीक-ठीक परिचय केवल औत्सुक्यकी शान्तिके लिये ही आवश्यक नहीं है, जिस युगमें हम वास कर रहे हैं अुसमें शांतिपूर्वक वास करनेके लिये भी हमें विभिन्न जातियोंकी जानकारी ठीक-ठीक होनी चाहिये । राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थवश और अपने संस्कारोंके कारण अेक जाति दूसरीको ग़लत समझती है । आजकल यह बात बहुत जटिलरूप धारण कर गयी है । यद्यपि वैज्ञानिक अुन्नतिने देश और कालके व्यवधानको कम कर दिया है परन्तु मानसिक संकीर्णता अुसी अनुपातमें कम नहीं हुअी है । अिसका परिणाम पारस्परिक अविश्वास, युद्ध, विग्रह, कलह और रक्तपात होता है ।

हम पहले ही देख चुके हैं कि अुत्तम ग्रंथ जातिके ठीक-ठीक परिचायक हैं । अुसकी आशा-आकांक्षा, गुण-दोष, आचार-विचार आदिको अुसके महान् ग्रंथ ही ठीक-ठीक अुपस्थित करते हैं । अिसलिये जातीय (राष्ट्रीय) साहित्यके अुत्तम ग्रंथोंका अध्ययन और प्रचार मानव-समाजकी भावी सुख-शान्तिके लिये भी आवश्यक है । शेक्सपियरको पढ़कर हम अंग्रेज जातिकी जिस भीतरी सहृदयताका परिचय पाते हैं वह विदेशी लेखकोंकी लिखी हुअी सैकड़ों यात्रा-विवृतियोंसे भी नहीं पा सकते ।

परिचय-ग्रंथ किसी खास प्रयोजनसे लिखे जाते हैं या किसी खास सिद्धान्तके प्रतिपादनके लिये लिखे जाते हैं । अिसलिये अुनमें द्रष्टाके विचार ही प्रधान हो अुठते हैं । अिस श्रेणीके लेखक अुस जातिका परिचय करानेके बदले अुस जाति-संबंधी अपने विचारोंपर ही अधिक ज़ोर देते हैं ।

फलतः अुससे ग़लत-फ़हमी पैदा होने या बढ़नेकी आशंका रहती है। मिस मेयोकी 'मदर अिंडिया' में अिस देशको अितने भद्दे रूपमें अुपस्थित किया गया था कि अुससे सारे संसारमें भारतवर्षके प्रति घृणाका भाव बढ़ जाता।

(ग) अूपर जो बात परिचय-ग्रंथके लेखकको लक्ष्य करके कही गअी है वह थोड़ी-बहुत मात्रामें कवि, नाटककार और अुपन्यास-लेखकमें भी अवश्य रहती है। परन्तु अुससे हमारे अध्ययनमें विशेष बाधा नहीं पड़ती। हम जानते हैं कि लेखकका अपना विशेष दृष्टिकोण है और वह भी अुस विशेष दृष्टिकोणसे देखनेपर ही निरंतर ज़ोर देता रहता है। फिर भी वह जीवित मनुष्यको दिखाता है, अुनकी छाया या कंकालको नहीं। अिसीलिये यद्यपि अुसके विशेष दृष्टिकोणसे हम द्रष्टव्यके विशेष पहलूको देखते हैं परन्तु फिर भी हम निष्प्राण ठठरियोंके समस्त पहलुओंको देखनेकी अपेक्षा सच्ची और कामकी चीज़ देखते हैं। अेक कामकी चीज़का देखना सौ बेकार और बेजान ठठरियोंके देखनेकी अपेक्षा निश्चय ही अधिक महत्वपूर्ण है।

§१८. अूपरकी बातको अेक अुदाहरणसे समझा जायः—

हिन्दीके प्रसिद्ध औपन्यासिक प्रेमचंद शताब्दियोंसे पद-दलित और अपमानित कृषकोंकी आवाज़ थे। पर्देमें क़ैद, पद-पदपर लांछित और अपमानित असहाय नारी जातिकी महिमाके ज़बर्दस्त वकील थे, और ग़रीबों और बेकसोंके महत्वके प्रचारक थे। व्यक्तिगत रूपसे वे मनुष्यकी सद्-वृत्तियोंमें विश्वास रखते थे और अुसकी दुर्वृत्तियोंको अजेय तो मानते ही नहीं थे, अुन्हें भावरूपमें स्वीकार भी नहीं करते थे। वे मानते थे कि जड़ोन्मुखी सभ्यताने हमें जड़ताको ही प्रधान और संग्रहणीय माननेकी ओर प्रवृत्त किया है। अिसीकी बदौलत हम आज भीड़-भभ्भड़को दिखाव-बनाव

और टीम-टामको महत्व देने लगे हैं। ये वस्तुअें मनुष्यको महान् नहीं बनातीं बल्कि अुसके मनको दुर्बल और आत्माको सशंक बना देती हैं।

व्यक्तिका आत्मबल अुसकी जड़-पूजासे अवरुद्ध हो जाता है। जिसके पास ये जड़-बंधन जितने ही कम होते हैं वह अुतनी ही जल्दी सत्यपरायण हो जाता है। रंगभूमिका ग़रीब सूरदास धनी विनयकी तुलनामें शीघ्र प्राप्य और स्थायी आत्मबलका अधिकारी हो जाता है। यह प्रेमचंदका अपना दृष्टिकोण है। अिस विशेष दृष्टिसे दुनियाको देखनेके लिये ही वे अपने पाठकको निमंत्रित करते हैं, परन्तु फिर भी अुनकी रची हुअी दुनिया सत्य है। अगर कोअी अुत्तर भारतकी समस्त जनताके आचार-विचार, भाव-भाषा, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुःख-सुख और सूझ-बूझको जानना चाहे तो प्रेमचंदसे अधिक अुत्तम परिचायक अिस युगमें नहीं पा सकेगा। झोपड़ियोंसे लेकर महलों तक, खोमचोंसे लेकर बैंकोंतक, ग्राम-पंचायतोंसे लेकर धारा-सभाओंतक अुसे अितने कौशलपूर्वक और प्रामाणिकताके साथ कोअी दूसरा नहीं ले जा सकता।

कोअी भी जिज्ञासु, प्रेमचंदकी अँगुली पकड़कर बेखटके मेंड़ोंपर गाते हुअे किसानको, अन्तःपुरकी मानवती बहूको, कोठेपर बैठी हुअी वार-विलासीनीको, रोटियोंके लिये ललकते हुअे भिखमंगेको, कूट-परामर्शमें लीन गोयन्दोंको, अीर्ष्यापरायण प्रोफेसरोंको, दुर्बल-हृदय बैंकरोंको, साहसी चमारोंको, ढोंगी पंडितोंको, फरेबी पटवारीको और नीचाशय अमीरको देख सकता है और निश्चिन्त होकर विश्वास कर सकता है कि जो कुछ अुसने देखा है वह ग़लत नहीं है। अिससे अधिक सचाअीके साथ दिखा सकनेवाले परिदर्शकको हिन्दी और अुर्दूकी दुनिया नहीं जानती। पर सर्वत्र ही वह लक्ष्य करेगा कि जो संस्कृतियों और संपदाओंसे लद नहीं गये हैं, जो अशिक्षित

और निर्धन हैं, जो गँवार और जाहिल समझे जाते हैं, वे अुन लोगोंकी अपेक्षा अधिक आत्मबल दिखाते हैं जो शिक्षित हैं, जो सम्पन्न हैं, जो चतुर हैं, जो दुनियादार हैं।

यह प्रेमचंदका अपना विशेष दृष्टिकोण है। अिससे हम अुत्तर-भारतकी जनताको देखनेकी अेक विशेष दृष्टि पाते हैं, परन्तु यह दृष्टि हमें अुस जनताके वास्तव रूपको समझनेमें बाधक नहीं है। यह वास्तव परिचयके अतिरिक्त हमारा अधिक लाभ है। परन्तु जब भारतवर्षका कोअी परिचय-लेखक अपनी विशेष अुद्देश्यकी सिद्धिके लिये ग्रंथ लिखता है और बताता है कि अिस प्रकारके वायु-मंडल और तापमानमें रहनेवाले आदमी आलसी, कल्पनाशील और कामचोर होंगे ही तो बहुत कुछ छोड़ देता है, बहुत कुछ जोड़ देता है और बहुत कुछ अपने मनसे गढ़ लेता है। हम सब समय अुसका विश्वास नहीं कर सकते।

---

४. साहित्यका व्याकरण

§१९. कोअी भी पुस्तक कुछ शब्दोंका संघात है। शब्दोंके समूह ही तो पुस्तक कहलाते हैं। परन्तु वे शब्द सजाकर अिस प्रकार रखे गये होते हैं कि अुनसे हम अेक अर्थ पाते रहते हैं। अिनमें कुछ संज्ञा शब्द हैं, कुछ क्रियापद हैं, कुछ विभक्तियाँ हैं, कुछ अुपसर्ग हैं, कुछ प्रत्यय हैं और फिर अिन सबका अेक सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध ही बड़ी चीज़ है, क्योंकि यह न रहे तो शब्दोंसे कुछ अर्थ निकलना असंभव हो जाय। अिस संबंधको बतानेवाले शास्त्रको व्याकरण कहते हैं।

साहित्यका भी अपना व्याकरण है। अिसे 'अलंकार-शास्त्र' कहते हैं और अिस शास्त्रके आचार्योंको आलंकारिक। यह शास्त्र शब्दोंके प्रकृति-प्रत्ययको लेकर सिर नहीं खपाता बल्कि शब्द और अर्थकी मनोहारिणी व्याख्या करता है। अिस शास्त्रमें शब्दकी शक्तियाँ, अुसका अर्थ, रस, गुण, दोष और अलंकारकी विवेचना होती है। साहित्यके विद्यार्थीको अिन बातोंकी जानकारी ज़रूर होनी चाहिये और अुसे यह भी मालूम होना चाहिये कि साहित्यके रसास्वादनमें अिस शास्त्रकी मर्यादाका क्या महत्व है। बहुत ज़रूरी बातोंकी चर्चा हम यहाँ संक्षेपमें कर लें तो अच्छा रहेगा। यह विषय बहुत शास्त्रीय है, पर यहाँ चर्चा करते समय हम अिसे कम-से-कम शास्त्रीय ढंगसे कहेंगे। सहज करके कहना ही हमारा अुद्देश्य है।

§२०. 'शेर' शब्दके सुनते ही हमारे सामने जो अेक विशेष प्राणीका रूप अुपस्थित हो जाता है अुसका कारण क्या है? आलंकारिक लोग कहते

हैं कि शब्दकी अेक विशेष शक्ति होती है जिसके द्वारा 'शेर' शब्दका अर्थ अेक विशेष प्रकारका जीव होता है, नाव या महल नहीं। अिस शक्तिका नाम अभिधा-वृत्ति है। यह शक्ति शब्दके अुस अर्थको बताती है जो कोष और व्याकरणसे प्राप्त है, जो परंपरासे अेक आदमी दूसरेसे सुनता और सीखता आ रहा है। आलंकारिक लोग अिस बातको कहनेके लिये बड़ा लंबा-सा शब्द व्यवहार करते हैं। यह शब्द है 'साक्षात्-संकेतित' अर्थात् 'शेर' शब्द कहनेसे सीधे अेक जीव-विशेषका ज्ञान होता है, बीचमें कोअी बाधा नहीं पड़ती। यह 'साक्षात्-संकेतित' अर्थ कोषसे, व्याकरणसे और व्यवहारसे तथा विश्वसनीय व्यक्तिसे जाना जा सकता है। अिस शक्तिके द्वारा जो अर्थज्ञान होता है अुसे अभिधेय या वाच्य अर्थ (वाच्यार्थ) कहते हैं।

§२१. लेकिन जब कहा जाय कि 'लड़का शेर है' तो स्पष्ट ही 'शेर' शब्दका वाच्यार्थ काम नहीं दे सकता। दुनिया जानती है कि लड़का आदमी है, शेर नहीं; फिर भी भाषामें अैसे प्रयोग बराबर ही होते हैं और समझनेवाले समझ भी लेते हैं। जब कहा जायगा कि 'लड़का शेर है' तो समझदार आदमी समझेगा कि लड़का वीर है, साहसी है, निर्भीक है। सारे हिन्दी शब्द-सागरको खोजनेपर भी 'शेर' शब्दका यह अर्थ नहीं मिलेगा। तो फिर निश्चय ही अभिधाके सिवा और भी कोअी शक्ति शब्दमें अवश्य है जो शेरके मुख्य अर्थको दबाकर अेक दूसरे अर्थको प्रकाशित करती है। अिस शक्तिको लक्षणा कहते हैं। जब मुख्यार्थका बाध होता है तो अुस मुख्यार्थसे संबद्ध किसी और अर्थको यह शक्ति प्रकट करती है। जब वक्ता अिस शक्तिका सहारा लेता है तो अुसके सामने कोअी-न-कोअी प्रयोजन रहता है, या फिर अुस अर्थमें शब्द रूढ़ हो गया होता है। जब वक्ता कहता

है कि लड़का शेर है तो असके मनमें लड़केकी बहादुरी बढ़ाकर कहनेका प्रयोजन जरूर रहता है। अिस शक्तिसे जो अर्थ पाया जाता है असे लक्ष्य अर्थ (लक्ष्यार्थ) कहते हैं। अूपरकी बात मनमें विचारें तो मालूम होगा कि लक्षणामें तीन बातें आवश्यक हैं :—

(१) मुख्यार्थका बोध ;

(२) मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थका संबंध; और

(३) प्रयोजन।

आलंकारिक पंडित बिना प्रयोजनवाली अेक लक्षणा भी मानते हैं। 'पत्र' का मुख्य अर्थ पत्ता है। अब असका अर्थ चिट्ठी और अखबार हो गया है। अिस प्रकार पत्र शब्द चिट्ठीके अर्थमें रूढ़ हो गया।

§२२. साहित्यमें अिस शक्तिकी बड़ी प्रबलता है। अिसलिये अिसके प्रधान भेदोंकी जानकारी आवश्यक है। (१) कभी-कभी मुख्यार्थ अेकदम छूट जाता है। 'जैसे अमेरिका धनी है' अिस वाक्यमें अमेरिका शब्दका मुख्यार्थ देश-विशेष है। वह अेकदम छूट गया है और असका अर्थ हो गया है अस देशके आदमी। अैसे स्थानोंपर जो लक्षणा होती है असे 'लक्षण-लक्षणा' कहते हैं। (२) कभी-कभी शब्दका मुख्यार्थ भी बना रहता है और अससे सम्बद्ध कोअी दूसरा अर्थ भी सूचित होता है। जब कहा जाता है कि 'टैंक बड़ी तेजीसे बढ़ रहे हैं' तो अिस वाक्यमें टैंक शब्दका अर्थ होता है टैंक और असके चलानेवाले सैनिक दोनों। टैंकका मुख्यार्थ तो अेक जड़ वस्तु है, वह कैसे चलेगा ? अिस प्रकार मुख्यार्थ बाधित है। यहाँ शब्द अपने मुख्यार्थको छोड़ नहीं देता। अैसे स्थलोंपर

जो लक्षणा होती है अुसे ' अुपादान-लक्षणा ' कहते हैं। (३) फिर अैसा भी होता है कि अेक शब्दका अर्थ दूसरेपर आरोप कर दिया जाता है। ' ब्राह्मण गाय है ' का अर्थ है 'ब्राह्मण निरीह है'। यहाँ गायकी निरीहता ब्राह्मणपर आरोपित है। अैसे स्थलोंपर जो लक्षणा होती है अुसे 'सारोपा-लक्षणा' कहते हैं। (४) कभी-कभी अेक विचित्र ढंगका प्रयोग होता है। जब हम कहते हैं कि ' घी आयु है ' तो सारोपा लक्षणासे अर्थ कर लेते हैं, लेकिन कोअी कहे कि 'यह आयु ही है' और घीका नाम ही न ले तो अैसे स्थलोंपर जो लक्षणा होगी अुसे ' साध्यवसाना-लक्षणा ' कहेंगे। अिस प्रकारके प्रयोगमें आरोपका आधार आरोप होनेवाले अर्थमें अपनी सत्ता ही खो देता है। तो अिस प्रकार मुख्य रूपसे लक्षणा चार प्रकारकी हुअी:—(१) लक्षण-लक्षणा, (२) अुपादान-लक्षणा, (३) सारोपा-लक्षणा, और (४) साध्यवसाना-लक्षणा।

अंतिम दो लक्षणाओंमें आरोपके आधार और आरोप्यामानमें कोअी-न-कोअी सम्बन्ध होता है। 'ब्राह्मण गाय है' अिस वाक्यमें ब्राह्मण और गायमें निरीहता नामक गुणका सादृश्य है। गुणोंका सादृश्य जिनमें होता है अुन लक्षणाओंको 'गौणी-लक्षणा' कहते हैं। किन्तु गुण-सादृश्यके अतिरिक्त और किसी संबंधसे लक्षणा हुअी हो तो अुसे शुद्धा कहते हैं। अिस प्रकार अन्तिम दो लक्षणाओंमेंसे गौणी और 'शुद्धा' नामसे दो-दो भेद हो जाते हैं। अर्थात् सब मिलाकर छः प्रकारकी लक्षणाअें हुअीं :—लक्षण-लक्षणा, अुपादान-लक्षणा, गौणी सारोपा-लक्षणा, शुद्धा सारोपा-लक्षणा, गौणी साध्यवसाना-लक्षणा और शुद्धा साध्यवसाना-लक्षणा।

नीचेके कोष्ठकसे प्रयोजनवती लक्षणाके ६ भेद स्पष्ट होंगे—
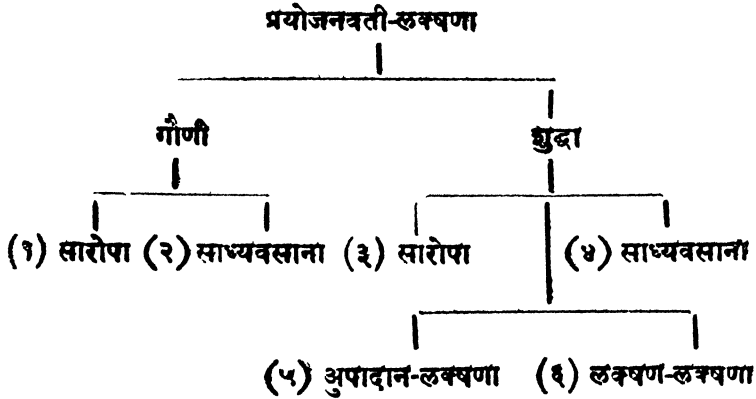
अिस प्रकार गौणीके दो और शुद्धाके चार ये कुल ६ लक्षणाअें हैं। लक्षणाके प्रसंगमें हम बराबर 'प्रयोजन' की बातें करते आ रहे हैं। यह प्रयोजन न तो वाच्यार्थ होता है और न लक्ष्यार्थ। वह वस्तुतः व्यंग्यार्थ है। व्यंग्यार्थ भी आचार्योंने दो प्रकारके बताये हैं— (१) गूढ़ और (२) अगूढ़। गूढ़-व्यंग्यको वही समझ सकता है, जो मर्मज्ञ हो; पर अगूढ़-व्यंग्य सहज ही समझमें आ जाता है। अूपर बताअी हुअी लक्षणाके छहों भेदोंमेंसे प्रत्येक लक्षणा गूढ़-व्यंग्या और अगूढ़-व्यंग्या भेदसे दो-दो प्रकारकी बताअी गअी है। अिनके अुदाहरणादि लक्षण-ग्रंथोंमें देखने चाहिये।

§२३. अभिधा और लक्षणाके अतिरिक्त शब्दकी अेक तीसरी शक्ति भी आलंकारिक आचार्य मानते हैं। अिन आलंकारिकोंके सिवा अन्य शास्त्रकार अिस तीसरी वृत्तिको नहीं मानना चाहते। अिस तीसरी शक्तिका नाम व्यंजना है। अिससे जो अर्थ सूचित होता है अुसे व्यंग्यार्थ कहते हैं। पहले जिन दो वृत्तियोंकी चर्चा हुअी है अुनसे यह भिन्न प्रकारकी है।

अभिधा और लक्षणा केवल शब्दके बलपर ही काम करती हैं; यह अर्थके बलपर भी। अिसीलिये अिनके दो भेद किये गये हैं—शाब्दी और आर्थी। यह व्यंजना अभिधामूलक भी होती है, लक्षणामूलक भी होती है और व्यंजनामूलक भी होती है। सासने बहूसे कहा—'सूर्य अस्त हो गया।' बहूने अिसका अर्थ समझा कि दीपक जलाओ। यह अर्थ वाच्य नहीं हो सकता, क्योंकि सूर्यका दीपक अर्थ और अस्त होनेका जलाना अर्थ किसी प्रकार साक्षात्-संकेतित नहीं है। फिर यह अर्थ लक्ष्य भी नहीं है, क्योंकि लक्षणाकी पहली शर्त है मुख्य.र्थमें बाधा। सो, सूर्यका मुख्यार्थ जो आसमानमें चलता दिखनेवाला अुज्ज्वल नक्षत्र-पिंड है वही यहाँ भी है। अुसका अस्त होना ठीक ही प्रयोग है। कहीं कोअी बाधा नहीं है। अिसीलिये अिस अर्थको न तो वाच्य ही कह सकते हैं और न लक्ष्य ही।

(१) कअी बार अैसा होता है कि अेक ही शब्दके अनेक साक्षात्-संकेतित अर्थ होते हैं। प्रसंग देखकर कोअी अेक अर्थ नियत कर लिया जाता है। 'सैन्धव' घोड़ेको भी कहते हैं, नमकको भी। भोजनके प्रसंगपर सैन्धव माँगनेवालेको नमक ही दिया जायगा, घोड़ा नहीं। प्रसंगसे सैन्धवका अर्थ नियत हो गया है। अभिधा द्वारा जब कोअी अेक अर्थ नियत हो जाता है और फिर भी अुस अर्थसे यदि दूसरा अर्थ प्रतीत होता हो तो वहाँ 'अभिधा-मूला-व्यंजना' समझनी चाहिये। हम अूपर देख आये हैं कि लक्षणामें अेक प्रयोजन रहा करता है। अुस प्रयोजनको व्यंग्य अर्थ ही समझना चाहिये, क्योंकि प्रयोजन न तो वाच्य ही है और न लक्ष्य ही। अिसालिये निश्चय ही यह किसी तीसरी शब्द-शक्तिका विषय है।

अिस प्रयोजनकी प्रतीति करानेवाली शक्तिको 'लक्षणामूला-व्यंजना' कहते हैं। लक्षण-ग्रंथोंमें बताया गया है कि अभिधामूला और लक्षणामूला

शाब्दी-व्यंजनाओंके अतिरिक्त आर्थी-व्यंजना भी होती है। अिन दोनोंको शाब्दी-व्यंजना अिसलिये कहते हैं कि अभिधामूला तो अनेकार्थक शब्दोंपर निर्भर है और लक्षणामूला लाक्षणिक शब्दोंपर।

(२) आर्थी-व्यंजना वहाँ होती है जहाँ निम्नलिखित १० बातोंमेंसे किसी अेक या अधिकके वैशिष्ट्यसे व्यंग्यार्थकी प्रतीति होती है। ये दस बातें ये हैं— (१) वक्ता या कहनेवाला, (२) बोधव्य या सुननेवाला, (३) काकु या कंठध्वनिकी विशिष्ट भंगी, (४) वाक्य, (५) वाच्य, (६) अन्य-सान्निधि अर्थात् कहनेवाले और सुननेवालेके अतिरिक्त किसी तीसरेकी अुपस्थिति, (७) प्रकरण, (८) देश, (९) काल और (१०) चेष्टा। काव्य पढ़नेवालेको नित्य ही अैसे प्रसंग मिलते रहते हैं जहाँ अिन दसोंमेंसे किसी भी अेककी विशिष्टतासे और-का-और अर्थ प्रतिभासित हो जाता है। सीताजीने अयोध्यासे ज़रा बाहर निकलते ही कहा—'पिय पर्णकुटी करिहौ कित है!' यहाँ वक्ताकी विशिष्टतासे तुरंत पता चल जाता है कि कभी घरसे बाहर पैदल चलनेका अभ्यास न होनेसे सीताजी थक गअी हैं। यहाँ वक्ताकी विशिष्टतासे ही व्यंग्यार्थकी प्रतीति होती है।

अन्य-सन्निधिका भी अेक उदाहरण लिया जाय। अेक लड़की किसी लड़केसे प्रेम करती है। अुससे मिलनेको व्याकुल है, पर अुसे कोअी खबर भी नहीं भिजवा सकती। अचानक अेक दिन वह लड़का दिख गया, पर उस समय लड़कीकी सखी मौजूद थी। लड़कीने होशियारीके साथ अपनी सखीसे कहा—'क्या बताअूँ सखी, दिनभर काममें जुती रहती हूँ। सिर्फ शामको थोड़ी फुरसत मिलती है तब कहीं नदी-किनारे पानी लाने जाती हूँ, पर अुस समय वहाँ कोअी चिड़ियाका पूत भी नहीं होता। क्या करूँ, लाचार हूँ।' अिस साधारण वाक्यका अर्थ अुस लड़केके नजदीक रहनेसे यह हो जाता है कि तुम शामको नदी-किनारे मिलो। यह सब आर्थी-व्यंजनाके अुदाहरण हैं।

§२४. अिस प्रकार शब्द तीन प्रकारके हुअे—वाचक, लक्षक और व्यंजक। अर्थ भी तीन प्रकारके हुअे—वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। जब व्यंग्यार्थका चमत्कार अितना शक्तिशाली हो कि वह वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थके चमत्कारको दबा दे तो अुस व्यंग्यार्थको 'ध्वनि' कहते हैं। अिसी 'ध्वनि' को 'अुत्तम काव्य' का आत्मा कहा गया है। जब उसका चमत्कार वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थसे कुछ दबकर हो या बराबर-बराबर हो, तो काव्य 'मध्यम' हो जाता है, और जब वह अेकदम हो ही नहीं या अत्यन्त फीका हो तो काव्य 'अवर' या 'चित्र' कहा जाता है। व्यंग्यकी प्रधानता ही काव्यकी जान है।

पुराने आलंकारिक आचार्योंने ध्वनिके अनेक भेद-अुपभेद गिनाये हैं। हमने पहले ही देखा है कि अन्यान्य शास्त्रकार अभिधा और लक्षणाके अतिरिक्त व्यंजना नामक किसी तीसरी शक्तिको नहीं मानते (दे०§२३)। वस्तुतः आलंकारिक पंडित भी व्यंजनाके लिये मूलरूपसे अिन दो शक्तियोंको आधार मानते ही हैं। अिसीलिये ध्वनि या तो लक्षणामूलक होती है या अभिधामूलक। लक्षणामूला-ध्वनिमें वाच्यार्थ या तो दूसरे अर्थमें संक्रमित हो गया होता है या अत्यन्त तिरस्कृत होता है। वर्षाकालमें सीताके वियोगसे अत्यन्त व्याकुल होकर रामचंद्रने कहा कि 'मैं राम हूँ, सब सह लूँगा। पर हाय, जानकी कैसे सहेगी!' अिसमें 'राम' शब्दका अर्थ है नाना दुःख शोकको सहनेवाला, कठोर-हृदय व्यक्ति। यहाँ 'राम' शब्द 'क्रूर और कठोर हृदय' अिस दूसरे अर्थमें संक्रमित हो गया है। कभी-कभी वाच्यार्थ अत्यन्त तिरस्कृत होता है। जैसे कोअी अपने शत्रुसे कहे कि 'वाह, आपकी भल-मनसाहतका क्या कहना!' तो 'भलमनसाहत'का वाच्यार्थ अेकदम छूटकर 'दुर्जनता' अर्थ हो जायगा और अत्यधिक अपकार करनेकी ध्वनि निकलेगी। अिस प्रकार लक्षणामूला-ध्वनि या 'अर्थान्तर संक्रमित-वाच्य' होती है या 'अत्यन्त तिरस्कृत-वाच्य'।

पर अभिधामूला-ध्वनिमें वाच्यार्थ तिरस्कृत नहीं होता। यहाँ वाच्यार्थ विवक्षित या वांछित रहता अवश्य है, पर अन्यपरक हो जाता है। अिसीलिये अिसे 'विवक्षितान्यपर-वाच्य' जैसा लंबा नाम दिया गया है। पंडितोंने अिसके अनेक भेद-अुपभेद किये हैं। मोटे-मोटे भेद भी अनेक हैं। पर मुख्य रूपसे दो भाग हैं। कभी-कभी वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थका क्रम समझमें आ जाता है, अुन स्थलोंपर 'संलक्ष्यक्रम-व्यंग्य' होता है। पर कहीं-कहीं अुनको लक्ष्य करना कठिन हुआ करता है, अुसे 'असंलक्ष्यक्रम-व्यंग्य' कहते हैं। यह अन्तिम भेद रस, भाव, रसाभास, भावाभास आदिमें होता है। आगेकी आलोचनाओंके लिये अितना जानना ही पर्याप्त है। विशेष जाननेके लिये किसी लक्षण-ग्रंथोंका पढ़ना चाहिये।

§२५. हम नीरस चर्चामें लगे हुअे हैं। व्याकरण साहित्यका भी हो, तो व्याकरण ही है, वह नीरस तो होगा ही। परन्तु अलंकार-शास्त्रके आचार्य व्याकरण लिखते समय भी कुछ सरसता ज़रूर बनाये रखते थे। भीतरसे प्रायः सभी कवि थे। कविता अुनकी दृष्टिमें अेक सुंदरी स्त्रीके समान है। हमने अूपर देखा है कि अुसकी आत्माका नाम ध्वनि है। बहुत ठीक। आत्माका पता तो चल गया, परन्तु केवल आत्माका तो कोअी रूप नहीं होता। अुस सुंदरी स्त्रीके कुछ हाथ-पैर होंगे, कुछ गहने-कपड़े होंगे, कुछ भले-बुरे आचार-विचार होंगे—अिन सबके बिना सुंदर रूपकी कल्पना ही कैसे हो सकती है ? सो, आलंकारिक पंडितोंने अिन बातोंको भी गिना दिया है :— शब्द और अर्थ ही अुस कविता-सुंदरीके शरीर हैं; शब्दों और अर्थोंके नाना प्रकारके हृदयग्राही 'कौशल' जिन्हें साहित्य-शास्त्रमें 'अलंकार' कहा जाता है, वे ही कविता-सुंदरीके गहने हैं; शूरता, मधुरता आदि धर्म जिस प्रकार मनुष्यके गुण हैं अुसी प्रकार अिस कविता-सुंदरीके भी कुछ 'गुण' हैं। शास्त्रमें अुसका

नाम भी 'गुण' दिया हुआ है। जिस प्रकार कानापन, लंगड़ापन, लूलापन आदि दोष मनुष्यके हुआ करते हैं अुसी प्रकार शब्द और अर्थका कानापन, लंगड़ापन भी हुआ करता है, कविता-सुंदरीके ये ही दोष हैं। अिस प्रकार यह कविता-सुंदरी सब प्रकारसे मनुष्य-जैसी ही है। जिस प्रकार कोअी मानव-सुंदरी सब अलंकार पहन ले, परन्तु अुसमें आत्मा हो ही नहीं तो वह भद्दी, निर्जीव जड़-पिंडके सिवा और कुछ नहीं होती; अुसी प्रकार जिस कवितामें अलंकार तो अनेक हों, पर ध्वनि हो ही नहीं, वह निर्जीव और भद्दी है।

लेकिन किसीमें आत्मा हो किन्तु अुसमें आत्मिक ज्योति न हो, केवल बनाव-सिंगारको, केवल बाहरी वस्तुओंको अितना महत्त्व दे रही हो कि अुसके भीतरकी ज्योति दब गअी हो, वह स्त्री यद्यपि सजीव कही जायगी परन्तु अुसे कोअी अच्छी स्त्री नहीं कहेगा। अुसी प्रकार कवितामें यदि ध्वनि कमजोर हो और अलंकार ही प्रधान हो तो कविता मध्यम मानी जायगी।

जिस प्रकार बिना गहनेके भी शौर्य-माधुर्यवती और सती-साध्वी स्त्री सबकी श्रद्धा आकृष्ट करती है, अुसी प्रकार कविता भी यदि अुत्तम ध्वनिवाली हो और अुसमें अेक भी अलंकार न हो तो भी सहृदयोंकी श्रद्धा आकृष्ट करती है। जिस प्रकार हम अुस स्त्रीको भक्तिपूर्वक स्मरण करते हैं जो सीधी-सादी, साफ हो और देशके पतनोन्मुख युवक-युवतियोंको अपनी तेजोमयी वाणीसे आत्म-त्याग और बलिदानका मार्ग सिखाती हो, अुसी प्रकार हम अुस कविताको भक्तिपूर्वक स्मरण करते हैं जो सहज और सीधी होती है और हमें आत्म-त्याग और बलिदानका मार्ग सिखाती है। भोग और पतनकी ओर ले जानेवाली कविता भी अुत्तम नहीं है और स्त्री भी नहीं। स्त्री जिस प्रकार संसारकी त्राणकारिणी है, स्थिति-रक्षिका है, धर्म और त्यागकी मार्गदर्शिका है, सेवा और बलिदानकी शिक्षादात्री है, अुसी प्रकार कविता भी है। जिस

प्रकार निर्जीव आदमीमें कोअी गुण नहीं रह सकता, क्योंकि शूरता, मधुरता आदि गुण आत्मामें रहते हैं; अुसी प्रकार निर्जीव ध्वनिहीन कवितामें कोअी गुण नहीं होते। जिस प्रकार गहने बाहरी चीज हैं अुसी प्रकार काव्यमें अलंकार भी बाह्य वस्तुअें हैं।

§२६. 'काव्यकी आत्मा ध्वनि है' यह सिद्धान्त यद्यपि काफी पुराना है, परन्तु फिर भी बहुत पुराना नहीं कहा जा सकता। जिन दिनों यह सिद्धान्त प्रतिष्ठा लाभ करने लगा था, अुन दिनों काव्य नामसे अैसी बहुत-सी बातें परिचित हो चुकी थीं जिन्हें अिस सिद्धान्तके माननेवालोंको छोड़ देना पड़ता। ध्वनिके सिद्धान्तको माननेवालोंने बहुतेरी बातोंको अुत्तम काव्य माननेसे अिन्कार कर दिया, पर बहुत कुछको अुन्होंने स्वीकार भी किया। ध्वनिको ही अुन्होंने तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया— (१) वस्तु-ध्वनि, (२) अलंकार-ध्वनि और (३) रस-ध्वनि। जहाँ कोअी वस्तु या अर्थ ध्वनित होता हो वहाँ 'वस्तु ध्वनि', जहाँ कोअी अलंकार ध्वनित हो वहाँ 'अलंकार-ध्वनि' और जहाँ कोअी रस ध्वनित हो वहाँ 'रस-ध्वनि'। अैसा जान पड़ता है कि व्यवहारमें ये सभी ध्वनिवादी रस-ध्वनिको ही काव्यकी आत्मा मानते थे। प्रथम दो प्रकारकी ध्वनियाँ प्राचीन आचार्योंसे समझौता करनेके लिये मान ली गअी थीं। रसको अुत्तम ध्वनि तो माना ही गया है, विश्वनाथ नामक आचार्यने तो रसात्मक वाक्यको ही काव्य कहा है अर्थात् अुनके मतसे काव्यकी आत्मा रस है, बाकी दो ध्वनियाँ नहीं। हमने दूसरी पुस्तकमें यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि जब ध्वनिवादी आचार्य ध्वनिको काव्यकी आत्मा कहते हैं तो वस्तुतः अुनका अभिप्राय रस-ध्वनिसे ही होता है।

§२७. रस नौ हैं। नाटकमें आठ ही रस बताये गये हैं। भरत मुनिने अपने नाट्य-शास्त्रमें कहा है कि 'विभाव, अनुभाव और संचारी भावके

योगसे रसकी निष्पत्ति होती है।' यह बात सूत्र-रूपमें कही गओी है। अिसके प्रत्येक शब्दकी व्याख्या आवश्यक है।

(१) विभाव दो प्रकारके होते हैं—'आलम्बन' और 'अुद्दीपन'। आलम्बन—जैसे नायक और नायिका; अुद्दीपन—जैसे चाँदनी, अुद्यान, मलय-पर्वत अित्यादि। (२) कटाक्ष, रोमांच आदि शरीर-संबंधी विकारोंको 'अनुभाव' कहते हैं। (३) 'संचारीभाव' वे हैं जो मनमें अुठते-पड़ते और आते-जाते रहते हैं। शास्त्रकारोंने बताया है कि संचारी-भाव कुल तैंतीस हैं। (४) काव्य या नाटक में कुछ अैसे भाव होते हैं जो शुरूसे अन्ततक रहते हैं, अिनको 'स्थायी-भाव' कहते हैं। ये ही स्थायी-भाव 'रस' रूपमें परिणत होते हैं। नौ रसोंके स्थायी-भाव भी नौ हैं:—

रस	स्थायी-भाव	रस	स्थायी भाव
शृंगार	रति या लगन	वीर	अुत्साह
हास्य	हास	भयानक	भय
करुण	शोक	बीभत्स	जुगुप्सा
रौद्र	क्रोध	अद्‌भुत	विस्मय
		शान्त	निर्वेद

§२८. नाटकमें शान्तको रस नहीं मानते। अब हम भरत मुनिके सूत्रको समझ सकते हैं। अुसमें जो अनुभाव, विभाव और संचारी-भाव शब्द हैं अुनके अर्थ हमें मालूम हो गये। बाकी रहा 'निष्पत्ति' शब्द। अिस निष्पत्तिका क्या अर्थ है? हमने अूपर लक्ष्य किया है कि काव्य या नाटकमें कोअी अेक स्थायी-भाव ज़रूर रहता है जो शुरूसे आखिरतक बना रहता है। हमने अूपर यह भी लक्ष्य किया है कि नायक-नायिका आदिको आलम्बन कहा जाता है। वस्तुतः यों कहना चाहिये कि जब नायिकाके

चित्तमें प्रेमका प्रादुर्भाव होता है तो आलम्बन नायक होता है, और जब नायकके चित्तमें प्रेमका प्रादुर्भाव होता है तो आलम्बन नायिका होती है। जिसके चित्तमें प्रेमभाव आविर्भूत होता है वह 'आश्रय' कहा जाता है। तो स्थायीभाव आश्रय के चित्तमें आलम्बनके सहारे प्रवृत्त होता है और अुद्दीपन द्वारा अुद्दीप्त होता है।

जिस प्रकार अुद्दीपित किये जानेके बाद आश्रयके शरीरमें कुछ विकार होते हैं; वे 'अनुभाव' कहे जाते हैं। स्थायी-भाव आदिसे अन्ततक वर्तमान रहता है पर बीचमें कभी शंका, कभी असूया, कभी लज्जा, कभी भय आदि 'संचारी-भाव' आते-जाते रहते हैं। नाट्य-शास्त्रमें बताया गया है कि स्थायी ही राजा है, अन्यान्य भाव अुसके सेवक हैं। अुसी शास्त्रमें यह भी बताया गया है कि जिस प्रकार गुड़ आदि द्रव्य, सौंफ आदि मसाले वगैरहके संयोगसे छः रस निष्पन्न होते हैं, अुसी प्रकार नाना भावोंसे अुपहित स्थायी-भाव रसत्वको प्राप्त होता है।

जान पड़ता है कि स्वयं भरत मुनि 'निष्पत्ति' शब्दका अर्थ आस्वाद ही समझते थे। अुन्होंने अनेक बार भोज्य वस्तुके रसके साथ अुसकी तुलना की है। अब ध्यानसे विचारकर देखा जाय कि नींबू, चीनी आदिके संयोगसे शर्बतका जो आस्वाद होता है वह न तो नींबू ही है न चीनी ही, न पानी है, न जिन सबका योगफल ही है और न जिनके बिना रह ही सकता है। वह रस जिन सबसे भिन्न है और फिर भी जिन्हीं वस्तुओंसे निष्पन्न या अभिव्यक्त हुआ है। ठीक जिसी प्रकार विभाव-अनुभाव आदिके योगसे जो रस निष्पन्न होता है वह न तो विभाव ही है, न अनुभाव ही है, न संचारी-भाव ही है, न स्थायी-भाव ही है, न जिन सबका योगफल ही है और न जिनके बिना रह ही सकता है। यह रस भी जिन सब वस्तुओंसे भिन्न है और फिर

भी भिन्हींसे निष्पन्न हुआ है। भिसलिये कविका भुद्देश्य भिन सभी वस्तुओंका सूक्ष्म रूपसे वर्णन करना नहीं है, बल्कि भिन सारी बातोंको साधन बनाकर भुस अलौकिक चमत्कारवाले रसको व्यंग्य करना है।

भूपरके कथनका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि रसके साथ विभाव, अनुभाव आदिका संबंध व्यंग्य-व्यंजक संबंध है। अर्थात् विभाव, अनुभाव आदि व्यंजक हैं और रस व्यंग्य है।

§२९. नाटक देखनेवाले या काव्य सुननेवाले सहृदयके चित्तमें स्थायी-भाव नाना प्रकारके पूर्व अनुभवोंके कारण पहलेसे ही वासनारूपमें स्थित होता है। काव्य, नाटक आदिसे वह स्थायी-भाव (रति आदि) अुद्बुद्ध और आस्वादित होता है। काव्यमें भेक भैसी 'साधारणीकरण'की शक्ति होती है जो राममेंसे रामत्व, सीतामेंसे सीतात्व और सहृदय श्रोतामेंसे श्रोतृत्व आदि हटाकर साधारण स्त्री-पुरुषके रूपमें अुन्हें अुपस्थित करती है। जब काव्यार्थ भिस प्रकार अुपस्थित होता है तो अुसके फलस्वरूप सत्वगुणका अुद्रेक होता है—मनुष्य दुनियाकी संकीर्णतासे भूपर अुठता है, अुसका चित्त प्रकाशमय और आनंदमय हो जाता है। प्रकाश और आनंद सत्वगुणके ही धर्म कहे जाते हैं, भिसलिये जिस अवस्थामें मनुष्य छोटे-मोटे स्वार्थके अंधकारसे बाहर निकल आता है, संकीर्णताके भारसे हल्का हो जाता है और भेक आनंदकी अवस्थामें आ जाता है, अुस समय सत्वगुणका अुद्रेक हुआ रहता है।

रसकी अनुभूतिके समय भैसा ही होता है। रस विश्वजनीन होता है। अुसमें कोभी वैयक्तिक राग-द्वेष नहीं होता। रस-बोधके समय सहृदय विभावोंके साथ अपना अभेद अनुभव करता है। अभेदकी अनुभूतिमें कोभी बाधा पड़े तो रसानुभव असंभव हो जाता है। वह लौकिक भय-प्रीतिजनक

व्यापारोंसे भिन्न होता है, क्योंकि अुसमें व्यक्तिगत सुख-दुःख का स्वार्थ नहीं होता। लोकमें अेक स्त्री अेक पुरुषके प्रति जब अभिलाषा प्रकट करती है तो अुस अभिलाषामें व्यक्तिगत सुख-दुःखका भाव रहता है; पर काव्यमें जब यह बात होती है तो कविका शब्द-विन्यास मनुष्यको अेक अैसी अवस्थामें पहुँचा देता है जहाँ वैयक्तिक सुख-दुःखका भाव नहीं रहता। वहाँ सहृदय अेक निर्वैयक्तिक अलौकिक आनन्दका अनुभव करता रहता है। यह आनंद अुस आनंदके समान ही है जो योगियोंको अनुभव होता है। यद्यपि अपने ही चित्तका पुनः-पुनः अनुभूत स्थायी-भाव अपने आकारके समान ही अभिन्न है, तथापि काव्य-नैपुण्यसे वह गोचर किया जाता है; आस्वादन ही अिसका प्राण है, विभावादिके रहनेपर ही यह रहता है, नाना प्रकारके मीठे-खट्टे पदार्थोंसे बने हुअे शरबतकी भाँति यह आस्वादित होता है, मानो सामने परिस्फुरित होता हुआ, हृदयमें प्रवेश करता हुआ, सर्वांगको आलिंगन करता है, अन्यत्वको तिरोहित करता हुआ ब्रह्मानंदको अनुभव करानेवाला यह रस अलौकिक चमत्कारकारी है—अैसा शास्त्रकारोंका मत है।

जो बात अिस प्रसंगमें विशेष रूपसे लक्ष्य करनेकी है वह यह है कि (१) रस व्यंग्य होता है, वाच्य नहीं; (२) रस निर्वैयक्तिक और अलौकिक होता है; (३) रस आस्वादयिताके बाहर नहीं होता, और अिन्हीं बातोंके कारण (४) यदि कोअी कवि रसको वाच्य करे या वैयक्तिक आसक्तिका कारण बना दे तो वह कवित्वसे हीन समझा जाना चाहिये।

§३०. यदि हम रसके विभागको ध्यानसे देखें तो स्पष्ट ही मालूम होगा कि वे मनुष्यके मनोरागोंको आश्रय करके और अुन्हींके मनोरागोंको अवलंबन करके कल्पित किये गये हैं। पुरुष और स्त्रीमें जो प्रेम है अुसको आश्रय करके ही शृंगार रस है, परन्तु पुरुषका प्रेम यदि किसी देवतासे हो,

प्रकृतिसे हो तो वह कौन-सा रस होगा ? पुराने आचार्य अिसे रस नहीं भाव कहते थे। सो देवादि-विषयक प्रेमको 'भाव' नाम दिया गया है। बीचमें अेक अैसा समय गया है जब प्रेमके नामपर केवल पुरुष और स्त्रीके प्रेमका ही चित्रण किया गया है, प्रकृतिको या अुन प्राकृतिक शक्तियोंको—जिन्हें देवता कहा गया था, जैसे मेघ, विद्युत्, अुषा, सूर्य, चंद्र आदि—केवल अुद्दीपनके रूपमें वर्णित किया गया था।

हम आगे देखेंगे [§५०–५१] कि यह प्रवृत्ति अिन दिनों कम हो गअी है और कविलोग प्रकृतिको आलंबन विभावके रूपमें यथेष्टभावसे देखने लगे हैं। परन्तु रसको मानवीय मनोरागोंपर आश्रित समझनेका अेक परिणाम यह हुआ है कि मनुष्यकी प्रकृतिका खूब सुंदर विश्लेषण किया गया है। नायक कितने प्रकारके हो सकते हैं, नायिकाअें कितने प्रकारकी हो सकती हैं, अुनकी परिचारिकाअें कितनी तरहकी हो सकती हैं, अिन बातोंका बड़ा विस्तृत विवेचन किया गया है। स्त्रियोंका अुनकी अवस्था, वय, मनोभाव और सामाजिक परिस्थितियोंके आधारपर सूक्ष्म भेद किया गया है। यहींसे अुस विचित्र और शक्तिशाली साहित्यका आरंभ होता है, जिसे 'नायिका-भेद' कहते हैं।

अिन नायिकाओंके स्वाभाविक और अयत्नसाध्य अलंकारोंका विस्तृत विवेचन किया गया है। अिस प्रसंगमें लक्ष्य करनेकी बात यह है कि यद्यपि स्त्री और पुरुषके स्वाभाविक प्रेमकी व्यंजनामें रसानुभूति होती है, तथापि यह माना गया है कि यदि यह प्रेम अैसे पुरुष और अैसी स्त्रीके बीच हो जिनका संबंध सामाजिक मर्यादाके प्रतिकूल हो, या अेकतरफा हो तो 'रस' न होकर 'रसाभास' हो जाता है। पराअी स्त्रीसे जो प्रेम है वह सामाजिक मर्यादाका अुल्लंघन करता है, अुसके श्रवणमात्रसे सहृदयके चित्तमें विक्षेप होता है और

रसानुभूतिमें बाधा पहुँचती है। आचार्योंने पशु-पक्षियोंकी शृंगार-चेष्टाओंको भी रसाभास ही कहा है, क्योंकि पशु-पक्षी आदिके साथ सहृदय अपनेको अभिन्न नहीं समझ पाता। परवर्ती कवियोंने अैसे प्रसंगोंका भी यथेच्छ वर्णन किया है, पर है यह रसाभास ही। अिसी प्रकार 'भाव' भी जब अनुचित होता है तो 'भावाभास' कहा जाता है।

कभी-कभी अैसा भी होता है कि अेक रस दूसरेका अंग होकर केवल मुख्य रसको अलंकृत करनेके लिये आता है। अुस अवस्थामें अंग बना हुआ 'रस' रसके बदले 'रसवत्' कहा जाता है। जैसे कोअी शोकाभिभूत स्त्री अपने मृत पतिके हाथको लेकर कहे कि यही वह हाथ है जिसने अमुक-अमुक शृंगार-चेष्टाअें की थीं तो शृंगार-रस करुण-रसका अलंकरण होकर 'रसवत्' कहा जायगा।

§२१. व्यावहारिक जगत्की भीड़-भक्कड़के कारण साधारणतः मनुष्यकी संवेदनाअें भोथी हो गयी होती हैं। प्रत्येक वस्तुका ठीक-ठीक बिंब ग्रहण करना अुनके लिये संभव नहीं होता। दुनियाकी अधिकांश बातें साधारणतः सामान्य सत्य द्वारा ही प्रकट की जाती हैं। कवि जब किसी वस्तुको रसास्वादका साधन बनाता है तो अुस सामान्य सत्यसे अुसका काम नहीं चलता। वह अुसको निविड़भावसे अनुभव कराना चाहता है। भाषाके साधारण प्रयोगोंसे अुसका अुद्देश्य सिद्ध नहीं होता। अुस हालतमें वह अलंकारोंका आश्रय लेता है। वह शब्दोंमें झंकार पैदा करता है। ध्वनि-साम्यसे श्रोताका मन गलाता है और अपने वक्तव्यकी ओर अुसे अुत्सुक बना देता है। अिसीको 'शब्दालंकार' कहते हैं। परन्तु केवल शब्दालंकारसे भी कविका अुद्देश्य सिद्ध नहीं होता। शब्दालंकार पाठकको अुत्सुक बनाते हैं और साधारण-सी बातको असाधारणके समान बनाकर अुपस्थित करते हैं। "भौंरे जगह-जगह आमकी बौरोंकी ओर लपक रहे हैं"—यह अेक मामूली-सी खबर

है, लेकिन "ठौर-ठौर झम्पत झपत भौंर मौर-मधु-अंध" में शब्दोंमें जो झंकार है अुसने अुसे मामूलीसे बड़ा बनाकर श्रोताके सामने रखा है।

§३२. परन्तु कवि जब वक्तव्य वस्तुके किसी गुण-क्रिया या रूपको गाढ़ भावसे अनुभव कराना चाहता है तो वह 'अप्रस्तुत' का विधान करता है। अप्रस्तुत अर्थात् अप्रासंगिक। जो बात प्रासंगिक नहीं होती अुसे कौशलपूर्वक ले आकर कवि अपना अुद्देश्य सिद्ध करता है। 'मुख सुन्दर है'—अितना कहनेसे मुखकी कोअी विशेषता नहीं मालूम हुअी। सुंदर अेक सामान्य बात है। सैकड़ों वस्तुओंको हम सुंदर कहा करते हैं। अब मुख कैसा सुंदर है ?— हमारी यह जिज्ञासा बनी ही रहती है। अिसी विशेषताको अनुभव करानेके लिये कवि कहता है, 'मुख प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर है।' प्रफुल्ल कमलका कोअी प्रसंग नहीं था, प्रस्ताव तो मुखका चल रहा था, अिसीलिये प्रस्तुत (=प्रस्तावित) विषय तो मुख ही है, कमल अप्रस्तुत वस्तु है। वह मुखके विशेषत्वको गाढ़भावसे अनुभव करा देनेके लिये आया है।

साहित्य-शास्त्री अिस बातको अनेकानेक भेद करके समझाते हैं। हम यहाँ अुन सूक्ष्म विचारोंमें नहीं पड़ेंगे। अप्रस्तुतका विधान अर्थालंकारोंमें होता है। अुनमें भी अधिकतर सादृश्य बतानेवाले अर्थालंकारोंमें। जैसे शब्दोंके अलंकार श्रोताको वक्तव्यकी ओर अुत्सुक बनाते हैं, वैसे ही अर्थोंके अलंकार अुस वक्तव्यको गाढ़भावसे अनुभव करनेमें सहायक होते हैं। ये अर्थालंकार नाना प्रकारके हैं। कुछ सादृश्यमूलक हैं, कुछ 'विरोधमूलक' हैं, कुछ 'शृंखलामूलक' हैं, कुछ 'न्यायमूलक' हैं और कुछ 'गूढ़ार्थ-प्रतीतिमूलक' हैं। किसी भी अलंकार-ग्रंथमें अुन्हें खोज लिया जा सकता है।

§.३३ सबसे मुख्य है सादृश्य अलंकार। अिनमें कुछ 'अभिधामूलक' हैं, कुछ 'लक्षणामूलक' हैं और कुछ 'व्यंजनामूलक' हैं। अभिधामूलक

अलंकारोंमें भेद और अभेद दोनोंकी प्रधानता होती है। जब कहा जाता है कि मुख कमलके समान सुंदर है तो स्पष्ट ही मुख और कमलको भिन्न भिन्न माना जाता है; यद्यपि सुंदरता दोनोंमें अेक ही है। अर्थात् जहाँतक सुन्दरताका संबंध है दोनोंमें कोअी भेद नहीं है। अिस प्रकार अभिधामूलक अलंकारोंमें भेद और अभेद दोनोंकी प्रधानता होती है। लक्षणामूलक अलंकार अभेद-प्रधान होते हैं। जब कवि कहता है कि मुखकमलसे निःश्वाससुरभि निकल रही है तो मुख और कमलको अभिन्न मान लेता है। मुख और कमल दो चीजें हैं। अुनमें अभेद लक्षणा-द्वारा आता है। व्यंजनामूलक अलंकारोंमें सादृश्य व्यंग्य होता है। जब कहा जाता है कि जो ऋषि अिस बालिकासे तप कराना चाहता है वह कमलकी पँखड़ीकी धारसे बबूलका पेड़ काटना चाहता है, तो कमलकी पँखड़ी और बालिकामें तथा बबूलके पेड़ और तपमें जो सादृश्य है, वह व्यंग्य होता है।

अिस प्रकार अप्रस्तुतका विधान तीन प्रकारका हुआ:— (१) अभिधामूलक या भेदाभेद-प्रधान, (२) लक्षणामूलक या अभेद-प्रधान और (३) व्यंजनामूलक या गम्यौपगम्याश्रय *। अिन तीनों ही प्रकारके

---

* कुछ मुख्य अलंकारोंका वर्गीकरण अिस प्रकार हो सकता है:—

अर्थालंकार— १. सादृश्यगर्भ
२. विरोधगर्भ
३. श्रृंखलामूल
४. न्यायमूल
५. गूढ़ार्थ-प्रतीतिमूल

१. सादृश्यगर्भ-अलंकार

(क) भेदाभेद-प्रधान—
अुपमा (१)
अुपमेयोपमा (२)
अनन्वय (३)
स्मरण (४)

(ख) अभेद-प्रधानः—
(i) आरोपमूल —
रूपक (५)
संदेह (६)
अुल्लेख (७)
भ्रान्तिमान् (८)
अपह्नुति (९)

अप्रस्तुत विधानोंसे कवि वक्तव्यके रूप, गुण या क्रियाको गाढ़भावसे अनुभव कराता है। यदि वह अप्रस्तुत विधान करे भी किन्तु वक्तव्य वस्तुके रूप, गुण या क्रियाको गाढ़भावसे अनुभव न करा सके तो वह अप्रस्तुत विधान गलत और बेकार होगा।

§३४. भारतवर्षका अलंकार-शास्त्र बहुत सूक्ष्म और गहन है। संसारके किसी देशने असा सुंदर काव्य-विवेचन नहीं लिखा। हिंदीमें अुस शास्त्रके नाना अंगोंपर अनेक पुस्तकें लिखी गअी हैं; अिसलिये हम यहाँ अुन्हें तूल नहीं देना चाहते। अपने पाठकोंको यह स्मरण दिला देना चाहते हैं कि यह अेक सावधानीके साथ, अनेक तर्क-युक्तियोंसे परिमार्जित विचार-शास्त्र है। काव्यकी विवेचना करते समय अिसकी मर्यादाका सदा ध्यान रखना चाहिये।

---

५. कविता

§३५. अभी हम कविताकी परिभाषा बनानेके फेरमें नहीं पड़ेंगे। साहित्यका व्याकरण पढ़ते-पढ़ते हमने कविताके बारेमें भी थोड़ा पढ़ लिया है :—

(ii) अध्यवसायमूल
- अुत्प्रेक्षा (१०)
- अतिशयोक्ति (११)

(ग) गम्यौपगम्याश्रय—

(i) पदार्थगत :—
- दीपक (१२)
- तुल्ययोगिता (१३)

(ii) वाक्यार्थगत :—
- दृष्टान्त (१४)
- प्रतिवस्तूपमा (१५)
- निदर्शना (१६)

(iii) भेदप्रधान :—
- व्यतिरेक (१७)
- सहोक्ति (१८)

(iv) विशेषण-विच्छित्ति-मूलक :—
- समासोक्ति (१९)
- परिकर (२०)

(v) विशेषण-विशेष्य-विच्छित्याश्रय :—
- श्लेष (२१)

२. विरोधगर्भ —
- विरोधाभास (२२)
- विभावना (२३)
- विशेषोक्ति (२४)
- विषम (२५)
- अधिक (२६)
- असंगति (२७)

३. शृंखलामूल—
- कारणमाला (२८)
- अेकावली (२९)
- सार (३०)

४. न्यायमूल—
- अर्थान्तरन्यास (३१)
- काव्यलिंग (३२)
- अप्रस्तुत-प्रशंसा (३३)
- अर्थापत्ति (३४)
- अुदात्त (३५)
- परिवृत (३६)

५. गूढ़ार्थ-प्रतीतिमूल—
- वक्रोक्ति (३७)
- व्याजस्तुति (३८)
- भाविक (३९)

पंडितोंने नाना भावसे कविताकी परिभाषा करनेका प्रयत्न किया है। पर अैसा बराबर हुआ है कि परवर्ती कालके पंडित अुन परिभाषाओंको काटकर नअी परिभाषाअें बनाते रहे हैं। असल बात यह है कि काव्य अनुभव करनेकी चीज़ है, परिभाषामें अुसे बाँधना कठिन है। पुराने आचार्योंने गद्‌य और पद्‌य दोनोंमें काव्यत्व माना है, किसी-किसीने तो गद्‌यको ही कवियोंकी कसौटी कहा है। गद्‌यके विषयमें विचार करनेका अवसर हमें अन्यत्र मिलेगा। यहाँ पद्‌यबद्ध काव्यपर ही विचार किया जाय। साधारणतः 'कविता' कहनेसे पद्‌यबद्ध रचना ही समझी जाती है। परन्तु, साधारण बातचीतमें भी जब कोअी वक्ता, भावावेगपूर्वक, शब्दोंमें लालित्य लाकर और सरस बनाकर अुड़ती-अुड़ती बातें करने लगता है तो लोग कहने लगते हैं— 'अब अिनकी कविता शुरू हुअी' या 'कविता रहने दीजिये, कुछ कामकी बात कीजिये।'

यदि हम ध्यानसे अिन बातोंपर विचार करें तो जान पड़ेगा कि भावावेग, कल्पना और पद-लालित्यको कविता कहा जाता है। साधारण बातचीतमें यह भी प्रकट होता है कि कविता कामकी चीज़ नहीं है, वह केवल कल्पनाका विलास है! यह बात ज्यों-की-त्यों नहीं मानी जा सकती, क्योंकि साधारण बुद्धिके आदमी जिसे कामकी चीज़ कहते हैं अुसकी सीमा बहुत संकीर्ण होती है। पर अितना सत्य है कि कविताका क्षेत्र वहाँसे आरम्भ होता है जहाँ दुनियावी प्रयोजनकी सीमा समाप्त हो जाती है। अिसका मतलब यह नहीं कि कविता निष्प्रयोजन वस्तु है। अिसका मतलब सिर्फ यह है कि कविता अुस आनंदका प्रकाश है जो प्रयोजनकी संकीर्ण सीमाके अतिरिक्त होता है। वह प्रयोजनको छोड़कर नहीं रह सकता पर प्रयोजनके अतिरिक्त है।

लोकमें प्रसिद्‌ध है कि 'घीका लड्डू टेढ़ा भी भला होता है', क्योंकि जहाँतक लड्डूका प्रयोजन है—अर्थात् अुसकी मिठास, अुसके पेट भरनेवाले

गुण अित्यादिका संबंध है—वहाँतक अुसके गोल या अन्य सुंदर आकारमें ढलनेकी कोअी ज़रूरत नहीं। प्रयोजन टेढ़ेसे भी सिद्ध हो जाता है, फिर भी हलवाअी अुसे गोल और सुंदर बनानेका प्रयत्न करता है। यह बात प्रयोजनके अतिरिक्त है, यहाँ वह कला और आनंदके क्षेत्रमें आता है। प्रश्न हो सकता है कि क्या आनंद या सौन्दर्यानुभूतिका मनुष्यको कोअी प्रयोजन ही नहीं है, क्या ये बेकार बातें हैं?— हर्गिज नहीं। आनंद भी प्रयोजनीय है। पर जैसा कि मैंने शुरूमें ही कहा है साधारण बुद्धिके आदमी प्रयोजनका अर्थ बहुत संकीर्ण समझते हैं। यहाँ हम साधारण लोक-विश्वासकी चर्चा कर रहे हैं। ये बातें कविताकी परिभाषा नहीं हैं, अिनसे केवल अितना ही समझा जा सकता है कि साधारण बुद्धिके आदमियोंमें 'कविता' शब्दका क्या अर्थ समझा जाता है। परन्तु चूंकि साधारण जनताका विश्वास किसी न किसी सचाअीपर आश्रित होता है अिसलिये अिस विश्वासके सहारे हम कविताके मूल रूपका आभास पानेका भी प्रयत्न कर रहे हैं। सो, कविताका लोक-प्रचलित अर्थ वह वाक्य है जिसमें भावावेग हो, कल्पना हो, पद-लालित्य हो और प्रयोजनकी सीमा समाप्त हो चुकी हो।

§३६. हमारे अिस देशका अितिहास बहुत पुराना है। न जाने किस अनादि कालसे हमारे पूर्वज अिन विषयोंकी चर्चा करते रहे हैं। अुन्होंने काव्यको समझानेके अनेक रास्ते सुझाअे हैं। परन्तु जैसे-जैसे समाजमें नये-नये अुपादान आते गअे वैसे-वैसे अुनकी परिभाषाअें बदलती गअीं, क्योंकि नये-नये अुपादानोंके साथ मनुष्यकी कल्पना और भाव-प्रवणता भी नया-नया रूप धारण करती गअी। जिन विद्वानोंने अिस देशके साहित्यका अध्ययन किया है अुनमेंसे कअी लोगोंका अनुमान है कि शुरू-शुरूमें नाटकके प्रसंगमें ही रसकी चर्चा होती थी। अर्थात् 'रसकी' अुपयोगिता नाटकके क्षेत्रमें ही

स्वीकार की जाती थी, काव्यमें अलंकारोंका होना परम आवश्यक समझा जाता था। अिस मतको सर्वांशमें सत्य नहीं माना जा सकता तो भी अितना सही है कि काव्यमें चमत्कारको बड़ी चीज़ माना जाता था।

मैंने अपनी दूसरी पुस्तकमें अिस विषयकी विस्तृत आलोचना की है। यहाँ अितनाही प्रसंग है कि काव्यमें अुत्तम अुक्तियों और अलंकारोंका होना आवश्यक माना जाता था। परन्तु शीघ्र ही आचार्योंने अिस मतमें सुधार किया। वे कहने लगे कि शब्द और अर्थकी परस्परस्पर्द्धी चारुताके साहित्य (अर्थात् सम्मिलित भाव) को काव्य कहते हैं। फिर ध्वनिका संप्रदाय प्रबल हुआ। ध्वनिको ही काव्यका आत्मा बताया गया। मम्मट नामके प्रसिद्ध ध्वनिवादी आचार्यने और भी आगे बढ़कर कहा कि वे ही शब्द और अर्थ काव्य हो सकते हैं जो दोष-रहित हों, गुणयुक्त हों और कुछ अलंकार हों या न हों कोअी बात नहीं। अब, गुण रसके अुत्कर्ष-विधायक होते हैं सो, काव्यमें गुणका होना आवश्यक मानकर मम्मटने वस्तुतः रसको आवश्यक बताया। सो, ध्वनिको काव्यका आत्मा मानकर भी अुन्होंने वस्तुतः रसको ही अुसका आत्मा कहा। अिसी बातको विश्वनाथ नामके आचार्यने यों कहा कि 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है'। सो, धीरे-धीरे अिस देशमें रसको ही काव्यकी प्रधान वस्तु मान लिया गया।

यह रस मुँहसे कहकर नहीं प्रकट किया जाता बल्कि नाना भावसे छंदके संयोगसे, अलंकारकी सहायतासे, व्याकरणके भीतरसे, और अिसी प्रकारके नाना अिशारोंसे—ध्वनित किया जाता है। किसी लड़कीने यदि यह कह दिया कि 'मेरा प्रिय अिस ओर आया है अिसलिये मैं बहुत खुश हूँ।' तो अेक व्यक्तिगत संवाद मात्र है और सो भी अितना मामूली कि कोअी

मामूली-से-मामूली अखबार भी अिसे नहीं छापना चाहेगा। परन्तु यदि अुसने कहा—

'नाचि अचानक हू अुठे बिनु पावस बन मोर।
आनति हौं नंदित करी यहि दिसि नंद-किशोर॥'

तो यह अेक अुत्तम कविता हो जायगी। क्योंकि अुपमाके भीतरसे, लक्षणाके भीतरसे और समस्त पद-योजनाके भीतरसे अिसमें अेक अैसा रस ध्वनित हुआ है, जो किसी अेकका व्यक्तिगत प्रेम न होकर समस्त मानव-जातिके मनोरागको प्रकट करता है।

§३७. कविता क्या है, यह समझनेके पहले, कविता क्या नहीं है, यह समझ लेना ज़्यादा अच्छा है, क्योंकि अुस हालतमें हम कविताके लक्षणको आसानीसे परीक्षाकी कसौटीपर कस सकते हैं। हमने पहले ही लक्ष्य किया है कि कविता कहते ही हमारे मनमें सबसे पहली बात यह आती है कि वह पद्य है। परन्तु पद्यमें अैसी बहुत-सी बातें हो सकती हैं जो किसी प्रकार कविता नहीं कही जा सकतीं। पद्यमें ज्योतिष और वैद्यक-की पुस्तकें भी लिखी गअी हैं, परन्तु अुन्हें कोअी कविता नहीं कहता। पद्यमें लिखे जाने मात्रसे कोअी चीज़ कविता नहीं हो सकती। बहुत-से शास्त्र अैसे हैं जो कविता नहीं हैं परन्तु वे जीवनको समझनेके अुत्तम साधन हैं। विज्ञान काव्य नहीं है, दर्शन भी काव्य नहीं है, अितिहास काव्य नहीं है और पुराण भी काव्य नहीं है। काव्यकी अधिकांश व्याख्याअें अिन शास्त्रोंके आधारपर की गअी हैं, परंतु ये सभी शास्त्र अकेले-अकेले और मिलकर भी कविता या काव्य नहीं कहे जा सकते।

(१) विज्ञान तथ्यकी जानकारीपर आश्रित होता है। वैज्ञानिकका काम यह है कि वह वस्तुओंको अुस रूपमें ही अध्ययन करे जिस रूपमें

हैं। वह अुन वस्तुओंका विश्लेषण करता है, परीक्षण करता है और अन्तमें नाना वस्तुओंके विश्लेषण और परीक्षणके बाद अुनके सामान्य धर्मोंका पता लगता है। अिस प्रकार विज्ञान तथ्योंके भीतरसे अुनके सामान्य धर्मोंका पता लगाता है, फिर अुन सामान्य धर्मोंमें भी सामान्यता खोजता है—अिस प्रकार वह जागतिक प्रपंचके भीतरसे अेक सामान्य सत्य या 'अैक्य' को खोज निकालता है। अिस प्रकार विज्ञान भौतिक जगत्के कारण, कार्य और सामान्य धर्मके अध्ययनके द्वारा अिस जगत्की अेक युक्तिसंगत और बुद्धिगम्य व्याख्या अुपस्थित करता है। काव्य अैसा नहीं करता। वह कार्य-कारण-परंपराकी खोजमें सिर नहीं खपाता, और फिर भी अिस जगत्के अन्तर्निहित सत्यको अुससे समझा जा सकता है। विज्ञान काव्य नहीं हैं।

(२) दर्शन भी काव्य नहीं है, क्योंकि दर्शनका प्रधान अुत्स है संदेह। दार्शनिक जगत्की प्रत्येक वस्तुको जैसा है वैसाही नहीं मानता। वह प्रत्येक वस्तुको संदेहकी दृष्टिसे देखता है। जो कुछ दिख रहा है अुसके पीछे कार्य और रहस्य है, जैसा कुछ दिख रहा है वही चरम सत्य नहीं है, अिस पर्देके पीछे कोअी और व्यापार है। अुस बातको दार्शनिक अपनी सहज बुद्धिसे समझता है, विज्ञान अुसका साधन हो सकता है, परन्तु वह विज्ञानको ज्यों-का-त्यों नहीं मान लेता। वैज्ञानिक और दार्शनिक निरीक्षण-पद्धतियोंमें विशेष अन्तर यह है कि वैज्ञानिक कुछ भी पहलेसे नहीं मान लेता। वस्तुओंका स्वभाव-अध्ययन करते-करते वह सामान्य सत्यतक पहुँचनेका प्रयास करता है। जहाँ वह अपने अध्ययनमें बाधा पाता है वहाँ रुक जाता है और स्पष्ट रूपसे घोषणा करता है कि अब अिसके आगे विज्ञानकी गति बाधित है। दार्शनिक कहीं नहीं रुकता, अुसकी अपनी सहज-बुद्धिसे निर्णीत सत्यही मार्ग दिखाता है। जहाँ विज्ञानकी सहायता अुसे नहीं

मिलती वहाँ वह अपनी तर्कबुद्धिसे अग्रसर होता है। लेकिन काव्य अैसा नहीं करता। अिसलिये दर्शन भी काव्य नहीं है।

(३) अिसी तरह अितिहास भी काव्य नहीं है। अुसका कार्य भी तथ्योंकी दुनिया है। वह अपने अस्तित्वके लिये पद-पद पर बाह्य प्रमाणोंका आश्रय चाहता है। अितिहास अुन तथ्यमूलक घटनाओंकी व्याख्या है जो कालके भीतरसे मानव-जीवनके संबंधमें अग्रसर होती रही हैं। काव्यमें अैतिहासिक व्यक्तियोंकी चर्चा हो सकती है, परन्तु वे सब समय तथ्यकी ही अुपज होंगी अैसा नहीं कह सकते।

(४) पुराण मनुष्यकी अुन कल्पनाओंकी जातीय रूप है जो जगत्के व्यापारोंको समझनेमें बुद्धिके कुंठित होनेपर अुद्‌भूत हुअी थीं और दीर्घकालतक जातीय चिन्ताके रूपमें संचित होकर विश्वासका रूप धारण कर गअी हैं। काव्यकी कल्पना कल्पना ही रहती है, वह सत्यको ग्रहण करनेमें सहायक होती है। कल्पनाने जहाँ विश्वासका रूप धारण किया वहाँ वह पुराण हो गअी, काव्य नहीं रही। काव्यकी कल्पना सदा सत्यको गाढ़भावसे अनुभव करनेका साधन बनी रहती है, स्वयं सत्यको आच्छादित करके प्रमुख स्थान नहीं अधिकार कर लेती है। सो, काव्य पुराणसे भिन्न वस्तु है।

§३८. कुछ लोगोंने कविताको जगत्‌के व्यापारोंको अभिव्यक्त करनेका साधन बताया है। यह ग़लत बात है। कवि जो कुछ संसारमें घटता हुआ देखता है अुसकी रिपोर्ट नहीं लिखा करता और जैसा कि कविवर रवींद्रनाथ ठाकुरने कहा है, "कविताका विषय कुछ भी क्यों न हो, यहाँतक कि वह कोअी दैनिक तुच्छ व्यापार भी हो, तो भी अुस विषयको ही शब्द-चित्रमें नक़ल करके व्यक्त करना अुसका अुद्देश्य कदापि नहीं हैं। विद्यापतिने लिखा है :—

जब गोधूलि समय बेलि
धनि मन्दिर बाहिर भेलि
नव जलधरे बिजुरि-रेहा द्वंद्व पसारि गेलि ।

सायंकाल गोधूलि-वेलामें पूजा समाप्त करके बालिका मन्दिरसे निकलकर घरको लौटती है—हमारे देशके सांसारिक काज-कर्ममें यह घटना नित्य ही घटती रहती है । यह कविता क्या शब्द-रचना द्वारा अुसीकी पुनरावृत्ति है ? जीवन-व्यापारमें जो बातें घटा करती हैं; अुन्हींको व्यवहारकी जवाबदेहीसे मुक्त करके कल्पनाद्वारा अुपभोग करना ही क्या अिस कविताका लक्ष्य है ? मैं यह बात कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता । वस्तुतः बालिका मन्दिरसे निकलकर घरको चली है, यह विषय अिस कविताकी प्रधान प्रतिपाद्य वस्तु नहीं हैं । अिस विषयको केवल अुपलक्ष्य करके छन्दसे, पद-संघटनासे, वाक्य-विन्याससे अुपमा-संयोगसे जो अेक समग्र वस्तु तैयार हुअी है, वही असली चीज़ है । वह वस्तु मूल विषयके अतीत है, वह अनिर्वचनीय है । " रवीन्द्रनाथके अुपर्युक्त अुद्धरणसे जो बात अत्यन्त स्पष्ट हुअी है वह यह है कि कविताके आपाततः दिखनेवाले शब्द या अर्थ बड़ी बात नहीं हैं, अुनको अुपलक्ष्य करके कवि किसी अखण्ड या समग्र वस्तुको ध्वनित करता है । पुराने आचार्योंकी भाषामें कहना होता तो हम कहते कि अभिधा या लक्षणा द्वारा जो अर्थ प्राप्त होता है वह कविताकी बड़ी बात नहीं है । शब्दसे, अर्थसे, पद-विन्याससे, छंदसे, अलंकारसे अेक अनिर्वचनीय रस-वस्तु व्यंग्य होती है । रसध्वनि ही काव्यका प्राण है ।

§३९. कविके विषयमें नाना प्रकारकी लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं, जिनसे मालूम होता है कि कवि कोअी असाधारण मनुष्य होता है । निस्संदेह

वह सौ-पचास मामूली आदमियोंसे भिन्न होता है; परन्तु अिस विषयमें किसीको कोअी शंका नहीं है कि कवि है अिस दुनियाका ही जीव। वह जिन वस्तुओंसे अपना काव्य रचता है वह भी अिस दुनियाकी ही होती हैं, फिर भी हम अुसमें 'अलौकिक रस' का साक्षात्कार करते हैं। वस्तुतः अलौकिक शब्दका व्यवहार हम अिसलिये नहीं करते कि वह अिस लोकमें न पाअी जानेवाली किसी वस्तुका द्योतक है बल्कि अिसलिये करते हैं कि लोकमें जो अेक नपी-तुली सचाअीकी पैमाअिश है अुससे काव्यगत आनन्दको नहीं नापा जा सकता। बाबू श्यामसुंदरदासने अिसीलिये कहा है कि "काव्यके सत्यसे हमारा अभिप्राय यह है कि काव्यमें अुन्हीं बातोंका वर्णन नहीं होना चाहिये, और न होता ही है, जो वास्तवमें सत्यताकी कसौटीपर कसी जा सकती हैं, पर अुनका भी वर्णन होता है और हो सकता है जो सत्य हो सकती हैं।"

§४०. अूपर हम बराबर तथ्य और सत्यकी बात करते रहे हैं। दोनोंमें क्या अन्तर है, यह समझ लिया जाय। "हमारा मन जिस ज्ञान-राज्यमें विचरण कर रहा है वह दोमुँहा पदार्थ है। अुसकी अेक ओर है तथ्य और दूसरी ओर सत्य। जैसा है वैसे ही भावको तथ्य कहते हैं और वह तथ्य जिसे आश्रय करके टिका है वह सत्य है। मुझमें जो 'मैं' बँधा हुआ है वही मेरा व्यक्तिरूप है। यह तथ्य अंधकारका बाशिंदा है, वह अपनेको स्वयं प्रकाश नहीं कर सकता। जभी अिसका परिचय पूछा जायगा तभी वह (परिचय) अेक अैसे बड़े सत्यके द्वारा दिया जायगा जिसे आश्रय करके वह टिका हुआ है। अुदाहरणार्थ, कहना होगा मैं हिन्दुस्तानी हूँ। लेकिन हिन्दुस्तानी है क्या चीज़? वह तो अेक अवच्छिन्न पदार्थ है, जो न छुआ जा सकता है, न पकड़ा जा सकता है। तथापि अुस व्यापक सत्यके द्वारा ही अुसका परिचय दिया जा सकता है। तथ्य खंडित और स्वतंत्र है, सत्यके भीतर ही वह अपने

"गोधूलिके समय बालिका मंदिरसे निकल आअी, अिस बातको तथ्यके द्वारा यदि पूरा करना होता तो शायद और भी बातें कहनी पड़तीं। आसपासकी अनेक खबरें अिसमें और जोड़ी जानेसे रह गअी हैं। कवि शायद कह सकता था कि वह मन-ही-मन मिठाअीकी बात सोच रही थी। बहुत संभव, अुस समय यही चिन्ता बालिकाके मनमें सबसे अधिक प्रबल थी। किन्तु तथ्य जुटाना कविका काम नहीं है। अिसीलिये जो बातें बहुत ही ज़रूरी और बड़ी हैं वही कहनेसे रह गअी हैं। यह तथ्यका बोझा जो कम हो गया है अिसीलिये संगीतके बंधनमें यह छोटी-सी बात अिस तरह अेकत्व-के रूपमें परिपूर्ण हो गअी है। और कविता अितनी सुंदर और अखण्ड होकर प्रकट हुअी है। पाठकका मन अिस सामान्य तथ्यके भीतरी सत्यको अिस गहराअीके साथ अनुभव कर सका है। अिस सत्यके अैक्यको अनुभव करके ही हम आनन्द पाते हैं।"—(रवीन्द्रनाथ)।

अूपरका अुद्धरण जरा लम्बा हो गया है। परन्तु अुसमें काव्यगत सत्यको जिस आसानीसे समझाया गया है वह दुर्लभ है। अिसलिये लम्बा अुद्धरण हमारे बहुत कामकी चीज़ साबित होगा। दुनियामें ज्ञान दो श्रेणीका है। (१) तथ्यगत और (२) सत्यगत। अूपर तथ्य और सत्यके भेदको बहुत अच्छी तरहसे समझाया गया है। जिस बातको हम विशेष रूपसे यहाँ लक्ष्य करना चाहते हैं वह यह है कि अखण्ड अैक्यको आश्रय करके ही सत्य प्रकाशित होता है। जो बात हमें खंडित और विच्छिन्न तथ्योंका अनुभव कराती है वह काव्य नहीं हो सकती।

§४१. अिस प्रकार कवि यद्यपि दुनियाकी साधारण वस्तुओंको ही अुपादानके रूपमें व्यवहार करता है परन्तु अुसका अर्थ असाधारण होता

है। पुराने पंडितोंने कहा है कि यदि कविके प्रयोग किये हुअे शब्द अुसके साधारण प्रचलित (कोश-व्याकरण-सम्मत) अर्थको बताकर ही रह जाते हैं तो वह कविता अुत्तम कोटिकी नहीं मानी जा सकती। जब छन्द, अलंकार, पद-संघट्टना आदिके योगसे कवि पाठकके चित्तको सत्त्व गुणमें स्थिर कर देता है (दे० § २९) —अर्थात् अुसे दुनियाकी संकीर्णताओंसे अूपर अुठा ले जाता है; वह 'मैं' और 'मेरे' के संकीर्ण घेरेसे बाहर निकल आता है, तभी अुसे रसका अनुभव होता है। अिसीलिये यह रस अलौकिक कहा जाता है। अब, जो छन्द, अलंकार और पद-संघट्टना अिस रसका साक्षात्कार कराते हैं वे निश्चय ही काव्यके महत्त्वपूर्ण अस्त्र हैं। अिन्हें काव्यमेंसे हटाया नहीं जा सकता। परन्तु अितना अवश्य याद रखनेकी बात है कि ये सभी साधन हैं; साध्य नहीं।

यदि कवि अिन्हींको सब कुछ समझ ले और अैसी कविता लिखने बैठ जाय जिसमें काव्यगत सत्यकी तो कोअी परवा ही न की गअी हो और केवल छन्द, अलंकार और पद-लालित्यको ही बड़ा करके दिखानेकी चेष्टा की गअी हो तो अुसकी कविता अुत्तम नहीं मानी जायगी। अनाड़ी आदमीके हाथमें अच्छे अस्त्र दे दिअे जायँ तो वह अनर्थ कर बैठेगा। अलंकार, छन्द आदि भी बड़े प्रभावशाली अस्त्र हैं,—किसीने विहारीके दोहोंको 'नाविकके तीर' कहा था!—अुत्तम कवि अिन अस्त्रोंका प्रयोग जानता है, अनाड़ी तो केवल भावों और रसोंकी हत्याके लिये ही अिसका अुपयोग करता है। हिंदी-साहित्यके अितिहासमें अेक अैसा युग बीता है जिसमें अिन अलंकारों, छन्दों और अन्यान्य बाह्य साधनोंका जमकर अुपयोग किया गया है। अुन दिनों बड़े-बड़े अुत्तम कवि हुअे थे, जिन्होंने अिनसे कमालकी रस-सृष्टि की है और अैसे अनाड़ी कवि भी कम नहीं हुअे, जिन्होंने जबरदस्ती अलंकारोंकी पल्टन सजाकर रसके शान्त राज्यमें अुत्पात मचा दिया था।

§४२. जैसा कि अूपर बताया गया है, कवि अिस दुनियाकी मामूली चीज़ोंसे ही अपना कारबार चलाता है। अिसलिये कवि अिन मामूली चीज़ोंको ठीक-ठीक पहचाने बिना अपना काम नहीं चला सकता। अच्छा शिल्पी जानता है कि कौन-सा पत्थरका टुकड़ा किस जगह बैठाया जाकर सौन्दर्यको सौगुना निखार देगा। और अुत्तम कवि भी जानता है कि कौन-सा शब्द या अर्थ या कौन-सी वस्तु या वस्तुधर्म किस प्रकार प्रयुक्त होकर श्रोताको अुपयुक्त रस-ग्रहण करानेमें सहायता कर सकता है। जिस प्रकार मामूली अींट-पत्थरके टुकड़ोंसे स्थपति अुत्तम महल बना देता है, अुसी प्रकार मामूली शब्दों और भावोंकी सहायतासे कवि अलौकिक रसकी सृष्टि करता है। अिसीलिये दुनियाकी अत्यन्त मामूली बातोंकी जानकारी भी कविका आवश्यक गुण है। लेकिन सिर्फ जानना ही काफी नहीं है। जानते तो बहुत-से लोग हैं परन्तु अुसको ठीक-ठीक अनुभव भी करा देना कविका ही काम है।

§४३. (१) कवि जिस किसी वस्तुका वर्णन करने क्यों न जाय अुसका प्रथम कर्तव्य है "बिंब-ग्रहण" कराना। "बिंब-ग्रहण" है तो बहुत पुराना शब्द पर आजकलकी साहित्यिक आलोचनामें यह आचार्य रामचंद्र शुक्लका चलाया हुआ शब्द है। जिस वक्तव्यसे किसी वस्तुका संकेतित अर्थमात्र ग्रहण न होकर अुसका पूरा चित्र अुपस्थित हो वही वक्तव्य बिंब-ग्रहण करानेमें समर्थ कहा जा सकता है। शुक्लजी अिसे भी अभिधा-शक्तिका ही कार्य मानते थे। हमने पहले ही लक्ष्य किया है कि नाना प्रकार के सादृश्यमूलक अलंकारोंकी सहायतासे कवि पाठकको वक्तव्य वस्तुके गुण, क्रिया, या धर्मको गाढ़भावसे अनुभव कराता है। परन्तु यह भी अेक साधनमात्र है। कविका वास्तविक कर्तव्य तो 'अेक' का अनुभव कराना ही है। बिंब-ग्रहण वस्तुतः तथ्य ही है (दे० §४०) सत्य नहीं। सादृश्यमूलक

अलंकार जिस वस्तुके गुण या धर्मको गाढ़ भावसे अनुभव कराते हैं वे भी तथ्य ही हैं। यही कारण है कि केवल अलंकारोंकी प्रधानतावाले काव्यको आचार्योंने 'अवर' या निचले कोटिका ही काव्य माना है।

(२) जिस प्रकार अप्रस्तुत विधानके द्वारा कवि वक्तव्य वस्तुका बिंब-ग्रहण और गाढ़ अनुभव कराता है, अुसी प्रकार छन्द अुसे गतिशील बनाते हैं तथा अुसके द्वारा पाठकके चित्तको संकीर्ण सीमाके बंधनसे मुक्त करते हैं। कविवर सुमित्रानंदन पन्तने कहा है कि "जिस प्रकार नदीके तट अपने बंधनसे धाराकी गतिको सुरक्षित रखते हैं—जिनके बिना वह अपनी ही बंधनहीनतामें धाराका प्रवाह खो बैठती है,—अुसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रणसे रागको स्पंदन, कंपन तथा वेग प्रदान करके निर्जीव शब्दोंके रोड़ोंमें अेक कोमल सजल कलरव भर करके अुन्हें सजीव बना देते हैं।" वस्तुतः भाषाके प्रवाहधर्मका नाम ही छन्द है। वाणभट्टकी कादम्बरी गद्यमें लिखी गअी है, किन्तु अुसमें अपना अेक विशेष प्रवाह है जो नित्य प्रति व्यवहारमें आनेवाले गद्यमें नहीं पाया जाता। आयुर्वेद और ज्योतिषकी बहुत-सी पुस्तकें पद्यमें लिखी गअी हैं पर अुनमें वह प्रवाह नहीं है जो काव्यमें अत्यन्त आवश्यक रूपमें वर्तमान रहता है। छन्दोंकी पुस्तकों में जो लक्षण दिअे हुअे हैं अुनके पालनमात्रसे पद्य काव्यमय नहीं हो जाते। पद्यमें जबतक प्रवाह न हो तबतक वह काव्यका आवश्यक साधन नहीं बन सकता। प्रवाहशील गद्यमें भी अेक प्रकारका छन्दोधर्म वर्तमान रहता है। अुस धर्मके रहनेसे ही गद्य गद्य-काव्य होता है। अतः यह समझना भूल है कि 'छन्दोधर्म' अर्थात् प्रवाह और गतिके बिना भी काव्यत्व संभव है।

(३) यमक, अनुप्रास आदि शब्दालंकार छन्दमें झंकार भरते हैं। अिसीलिये वे छन्दके सहायक हैं। कवि छन्द और शब्दालंकारके सहारे अपने अभीष्टतक पहुँचता है। अिसीलिये अन्त्यानुप्रास या तुक कविताका अेक महत्त्व-पूर्ण अुपादान माना गया है। यद्यपि तुकका न होना कोअी दोष नहीं है पर अुसका होना गुण अवश्य है।

§४४. दो बातें कवितामें प्रधान रूपसे विद्यमान पाअी जाती हैं। प्रथम यह कि कवि कुछ कहना चाहता है, और दूसरा यह कि अुस बातको कहनेके लिये वह किसी रचना-कौशलका व्यवहार करता है। पहलेको भाव-पक्ष कहा गया है और दूसरेको कला-पक्ष। हम अबतक कला-पक्षका ही विवेचन करते रहे। अब भाव-पक्ष पर आया जाय।

§४५. काव्यको मोटे तौरपर दो विभागोंमें बाट लिया गया है—(१) विषय-प्रधान और विषयि-प्रधान। प्रथममें कवि बहिर्जगत्में अपनेको लीन करके अपने बाहर रहनेवाली वस्तु (विषय) में सौन्दर्यका साक्षात्कार करता है, और दूसरेमें वह अपनी ही सुख-दुःखात्मक अनुभूतियोंको प्रकट करता है। चूँकि वह अपनेको (विषयीको) ही प्रकट करता है, अिसलिये अैसे काव्यको विषयि-प्रधान काव्य कहा जाता है। महाकाव्य, अैतिहासिक चरित्र, अुपन्यास आदि विषय-प्रधान होते हैं। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अेक और ढंगसे काव्यको दो भागोंमें विभक्त करके सोचा है :—

(१) अेक वह जिसमें अकेले कविकी बात रहती है।

(२) दूसरा वह जिसमें किसी बड़े सम्प्रदायकी बात रहती है।

अकेले कविकी बात कहनेका यह मतलब नहीं कि वह बात अैसी है जो दूसरोंकी समझमें नहीं आ सकती। अैसा होनेसे तो वह पागलपन

कहा जायगा। और फिर जो बात किसी व्यक्तिकी समझके संकीर्ण दायरेमें ही बद्ध है वह हमारी सामान्य मनुष्यताको किस प्रकार प्रभावित कर सकेगी और अखण्ड अैक्यका अनुभव किस प्रकार करा सकेगी? अकेले कविकी बातका तात्पर्य यह है कि कविके भीतर अिस प्रकारका सामर्थ्य है कि वह अपने सुख-दुःख, कल्पना और अभिज्ञताके भीतरसे विश्व-मानवके चिरन्तन हृदयावेग और जीवनकी मर्म-व्यथाको अनायास ही प्रतिध्वनित कर सकता है। अैसे सामर्थ्य को कवि गीति-काव्यका आश्रय लेकर प्रकाशित करता है। जिस प्रकार वीणाका अेक तार आहत होकर अन्य सभी तारोंमें अेक प्रकारका अनुरणन पैदा करता है, अुसी प्रकार कविका आहत हृदय सहृदय-मात्रको झंकृत कर देता है।

§४६. दूसरी श्रेणीके कवि वे हैं जिनकी रचनासे अेक समूचा देश और समूचा काल अपने हृदयको और अपनी अभिज्ञताको व्यक्त करके अुस रचनाको शाश्वत समादरणीय सामग्री बना देता है। अैसे कविको महाकवि कहते हैं और अुसके काव्यको महाकाव्य। रामायण और महाभारत हमारे देशके महाकाव्य हैं। शताब्दियोंतक कविलोग अिन महाकाव्योंको अवलंब करके काव्य लिखते आये हैं, अब भी लिख रहे हैं और आगे भी लिखते रहेंगे। पर अिनका सौंदर्य अभी जैसे-का-तैसा है। रामायणके राम, भरत, लक्ष्मण, सीता, कौशल्या, कैकेयी, रावण, हनूमान् आदि चरित्र महान हैं। वे कविकी भावावेश अवस्थाके कल्पित पात्र नहीं हैं, बल्कि समूची जातिकी युगव्यापी साधनाके परिणाम हैं। अिस काव्यको पढ़नेपर पीढ़ियोंका रचित भारतवर्ष प्रत्यक्ष हो जाता है। अिसी प्रकार महाभारतको अुज्ज्वल चरित्रोंका वन कहा जा सकता है। यह कवि-रूपी मालीका यत्नपूर्वक सँवारा हुआ अुद्यान नहीं है जिसके प्रत्येक लता, पुष्प-वृक्ष अपने सौंदर्यके लिये बाहरी सहायताकी अपेक्षा रखते हैं, बल्कि वह अपने-आपकी जीवनी शक्तिसे

परिपूर्ण वनस्पतियों और लताओंका अयत्न-परिवर्धित विशाल वन है जो अपनी अुपमा आप ही है।

महाभारतका कोअी भी चरित्र शायद ही महलोंके भीतर पलकर चमका हो। सब-के-सब अेक तूफ़ानके भीतरसे होकर गुज़रे हैं। अपना रास्ता अुन्होंने स्वयं बनाया है और अपनी रची हुअी विपत्तिकी चितामें वे हँसते-हँसते कूद गये हैं। अिस महाकाव्यका अदना-से-अदना चरित्र भी डरना नहीं जानता। किसीके चेहरेपर कभी शिकन नहीं पड़ने पाती। पाठक पढ़ते समय अेक जादूभरे वीरत्वके अरण्यमें प्रवेश करता है, जहाँ पद-पदपर विपत्ति तो है पर भय नहीं है; जहाँ जीवनकी चेष्टाअें बार-बार असफलताकी चट्टानसे टकराकर चूर-चूर हो जाती हैं, पर चेष्टा करनेवाला हतोत्साह नहीं होता; जहाँ गलती करनेवाला अपनी ग़लतीपर गर्व करता है, प्रेम करनेवाला अपने प्रेमपर अभिमान करता है और घृणा करनेवाला अपनी घृणाका खुलकर प्रदर्शन करता है। प्राचीन भारत अपने समस्त गुण-दोषोंके साथ महाभारतमें मूर्तिमान् हो अुठा है।

§४७. परन्तु अिस युगमें विषयि-प्रधान कविताका प्रचार ही अधिक हो गया है। वर्तमान हिन्दी-साहित्यमें अिस श्रेणीकी कविताका बहुत प्रचार है। तीन बातें अिन दिनों प्रधान रूपसे दृष्टिगोचर हो रही हैं— कल्पना, अनुभूति और चिन्तन।

(१) कल्पनाकी अवस्थामें अिस युगका कवि वर्तमान जगत्की अननुकूल और विसदृश परिस्थितियोंसे अूबकर अेक अनुकूल और मनोरम जगत्की सृष्टि करता है। अेक युग अैसा बीता है जब संसारके साहित्यमें कल्पनाका अखण्ड राज्य रहा है। कवि अिस दुनियाके समानान्तर धरा-

तलपर ही अेक अैसी दुनियाकी सृष्टि करता था, जहाँ प्रेमी और प्रेमिकाअें तो हमारे ही जैसी होती थीं; पर वहाँके क़ायदे-कानून अलग ढंगके होते थे और स्वच्छन्द प्रेममें जो सहस्रों बाधाअें अिस जगत्‌में अपने-आप खड़ी हो जाती हैं वे वहाँ नहीं होती थीं।

(२) परन्तु जब कवि चिन्ताकी अवस्थामें पहुँचता है तो वह प्रायः कल्पनाकी अवस्था आयत्त कर चुका होता है। अिसीलिये वह किसी चीज़को शुद्ध मनीषीकी भाँति न देखकर अुसपर कल्पनाका आवरण डालकर देखता है। दिगन्तके अेक छोरसे दूसरे छोरतक फैले हुअे नील नभोमण्डल, मणियोंके समान ग्रह-नक्षत्र और चंद्रिकाधौत धरित्रीको देखकर वह कभी कुछ भी चिन्तन क्यों न करे, अेक बार श्वेतवस्त्रधारिणी, विततकेशा, भूरि-भूषणा सुंदरी या प्रिय-वियोगमें कातर, खंडिता रजनी या अिसी प्रकारकी अन्य वस्तुकी कल्पना किये बिना नहीं रहता। कारण यह है कि कविका प्राथमिक कर्तव्य बिंब-ग्रहण कराना है और अुसका साधन अप्रस्तुत विधान है। अिसके बिना कवि मनोरम भावसे हृदयहारी बनाकर अपना वक्तव्य कह ही नहीं सकता। अप्रस्तुत विधानके समय कविकी कल्पना-वृत्ति सतहपर आ गअी होती है। वस्तुतः चिन्ता करते समय भी कवि वैज्ञानिककी भाँति तथ्यका विश्लेषण नहीं करता होता, बल्कि सत्यको सुंदर करके रखनेका प्रयास करता है (दे० § ३९-४०)।

(३) कवि अपने सीमित व्यक्तित्वके भीतर जिस सुख-दुःखका अनुभव प्राप्त किये होता है, अुसे वह जब कल्पनाके साहाय्यसे, छन्द, अुपमा आदिके संयोगसे और निखिल विश्वकी मर्म-व्यथाकी चिन्ता करके जब निर्वैयक्तिक करके प्रकट करता है, तो अुसे हम अनुभूति-अवस्था कहते हैं। अिस अवस्थामें कवि अपने सीमित सुख-दुःखको असीम जगत्‌में

अनुभव करता है। अिस प्रकार चिन्तनकी अवस्थामें कवि संसारको देखता है और सोचता है कि यह सब क्या हो रहा है, कैसे चल रहा है और क्यों चल रहा है? अनुभूतिकी अवस्थामें वह अनुभव करता है कि वह क्या हो गया है, कौन-सी वेदना या अुल्लास, विषाद या हर्ष संसारको किस रूपमें परिणत कर रहा है? कल्पनाकी अवस्थामें वह अिस जगत्के समानान्तर जगत्की सृष्टि करता है, जिसमें अिस जगत्की असुंदरताअें और विसदृशताअें नहीं रहतीं, पर अनुभूतिकी अवस्थामें अुसके पैर अिस दुनियापर ही जमे रहते हैं, वह अिसे छोड़ नहीं सकता।

§४८. भौतिकवादी वैज्ञानिकोंने प्रयोगशालामें यह बात सिद्ध कर दी है कि संसारकी संपूर्ण शक्तिमें घटती-बढ़ती नहीं होती। अेक वस्तुको जब हम नष्ट होते देखते हैं तो वस्तुतः अुसी परिमाणमें अन्य वस्तुअें बनती रहती हैं—संसारकी समूची शक्ति जैसी-की-तैसी बनी रहती है। कुछ नवीन विषयि-मूलतावादी पश्चिमी दार्शनिकोंने अिस मतका प्रत्याख्यान किया है। अुनका मत यह है कि मानसिक चिन्ताके रूपमें हम नित्य अिस विश्व-शक्तिमें कुछ बढ़ाते जा रहे हैं। कवियोंकी मानसी सृष्टि सत् वस्तु है—अर्थात् वह कल्पना होनेके कारण मिथ्या नहीं है, बल्कि अुसका अस्तित्व है—और वह निश्चय ही नित्य-नवीन होकर बढ़ती जा रही है। मैं अिस मतको नहीं समझ पाता, यह यहाँ साफ-साफ स्वीकार कर लेना ही अच्छा है। गीतामें कहा है कि जो वस्तु है ही नहीं वह कभी हो ही नहीं सकती और जो है वह कभी 'ना' नहीं हो सकती। आधुनिक वैज्ञानिकोंका मत अिसीका अनुवाद है। परन्तु यह सच है कि वाल्मीकिने जो मानसी सृष्टि की है वही तुलसीदासकी मानसी सृष्टि नहीं है, और मैथिलीशरण गुप्तकी भी निश्चय ही भिन्न सृष्टि है। तो क्या ये नअी रचनाअें विश्वमें कुछ नअी बातें नहीं जोड़

रही हैं ? क्या मानसिक होनेके कारण ही वे शून्य हैं ? मेरा अुत्तर है कि यह बात नहीं है। ये सभी रचनाअें नअी भी हैं और सत्य भी हैं, पर अिनकी रचनाके लिये भी किसी-न-किसी अैसी ही वस्तुका अुपयोग हुआ है जो पहलेसे ही है और बादमें भी रहेगी।

जो बात भौतिक जगत्में हम देख रहे हैं यह अुससे मिलती-जुलती है। नअी सामाजिक परिस्थितियाँ पुराने सड़े विचारोंका खाद संग्रह करती हैं और अुर्वर कवि-चित्तभूमिमें नया जीवन्त विचार अंकुरित होता है। पुराने बहुत-कुछको खाकर ही ये विचार नवीन होते हैं। जिस प्रकार अींट-पत्थरोंका ताजमहल नाना स्थानोंके पत्थर, मिट्टी, मसाले और मानव-श्रमको खपाकर बना है वैसे ही रवीन्द्रनाथकी गीतांजलि नाना स्थानोंकी कल्पना, अनुभूति और चिन्तनको पचाकर बनी है। पुराने पंडितोंने अिसी बातको जरा फक्कड़पनके लहजेमें कहा था—कोअी कवि अैसा नहीं है जो चोर न हो—"नास्त्यचौरः कविजनः"! कहनेका मतलब यह है कि मानसी सृष्टि भी पुराने विचारोंसे ही तैयार होती है।

§४९. काव्यमें विषयीके प्रधान होनेसे अुन गीत-प्रधान मुक्तकोंका प्रचलन बढ़ गया है जो व्यक्तिगत भावोच्छ्वासको आश्रय करके लिखे जाते हैं। अिंग्लैण्डमें जब व्यावसायिक क्रान्ति हुअी तो वहाँके सांस्कृतिक जीवनमें बड़ा परिवर्तन हुआ था। अुस परिवर्तनके समय कवियोंमें और विचारकोंमें सामाजिक रूढ़ियोंके प्रति अनास्थाका भाव बढ़ा था और व्यक्तिगत स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) का जोर रहा। अंग्रेजी अमलदारीके साथ-ही-साथ अिस देशमें अंग्रेजी साहित्य पढ़ाया जाने लगा। अुसीके फलस्वरूप अिस देशके कवियोंमें भी वैयक्तिक स्वाधीनता (अिन्डिविजुअल लिबर्टी)

का जोर बढ़ता गया। अिंग्लैण्ड और अिस देशकी परिस्थिति अेक-जैसी नहीं थी। अिंग्लैण्डमें यह हवा वहाँके भीतरी जीवनका परिणाम थी, जब कि अिस देशमें वह विदेशी संसर्ग और अन्य कारणका फल था। शुरू-शुरूमें अिसीलिये यह अस्वाभाविक-सी लगी, परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों कविगण अपने देशकी वास्तविक परिस्थितिके साथ और अपनी साहित्यिक परंपराके साथ सामंजस्य खोजते गये। सामंजस्य खोजनेवालोंमें प्रमुख कवि हैं—प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा। अिन कवियोंने भावमें, भाषामें, छन्दमें और मंडन-शिल्प (डेकोरेशन) में नवीन विचारोंके साथ सामंजस्य किया। अिस व्यक्तिगत स्वच्छन्दतावादके साथ-ही-साथ नाना भावके प्रगीत-मुक्तक अिस देशमें लिखे जाने लगे।

हमने पहले ही लक्ष्य किया है कि अिनमें कुछ कल्पनामूलक हैं; कुछ चिन्तनमूलक और कुछ अनुभूतिमूलक। मुक्तक अिस देशमें नअी चीज़ नहीं हैं। हालकी 'प्राकृत सतसअी' और अमरुकका संस्कृत 'अमरुक-शतक' और 'बिहारी-सतसअी' मुक्तक काव्य ही हैं। "मुक्तकमें प्रबंधके समान रसकी धारा नहीं रहती, जिसमें कथा-प्रसंगकी परिस्थितिमें अपनेको भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदयमें अेक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। अिसमें तो रसके अैसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय-कलिका थोड़ी देरके लिये खिल अुठती है। यदि प्रबंध-काव्य अेक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक अेक चुना हुआ गुलदस्ता है। अुत्तरोत्तर अनेक दृश्यों-द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या अुसके किसी अेक पूर्ण अंगका प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि कोअी अेक रमणीय खंड-दृश्य अिस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणोंके लिये मंत्रमुग्ध-सा हो जाता है। अिसके लिये कविको मनोरम वस्तुओं और व्यापारोंका अेक छोटा-सा स्तवक कल्पित करके अुन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषामें व्यक्त करना पड़ता है (रामचन्द्र शुक्ल)।"

अिन प्राचीन मुक्तकोंमें कविकी कल्पना कुछ अैसे शास्त्ररूढ़ व्यापारोंकी योजना करती थी जिनसे किसी रस या भावकी व्यंजना सुकर हो। आधुनिक प्रगीत मुक्तक कविके भावावेगके महत् क्षणोंकी रचना होते हैं, अुनमें गीतकी सहज और हल्की गति होती है। अिनकी गुलदस्तोंके साथ तुलना नहीं की जा सकती। ये विच्छिन्न जीवन-चित्र होनेपर भी प्रवाहशील होते हैं और अिनमें शास्त्र-रूढ़ व्यापार-योजनाकी आवश्यकता नहीं होती। पुराने रूपकोंमें कवि-कल्पनाकी समाहार-शक्ति प्रधान हिस्सा लेती थी, पर आधुनिक मुक्तकोंमें कविका भावावेग ही प्रधान होता है।

§५०. परन्तु अितना स्मरण रखना अुचित है कि आजकलके प्रगीत मुक्तकोंमें यद्‌यपि व्यक्तिगत अनुभूतियोंका प्राधान्य है तो भी वे अिसलिये हमारे चित्तमें आनंदका संचार नहीं करतीं कि वे कविकी व्यक्तिगत अनुभूति हैं, बल्कि अिसलिये कि वे हमारी अपनी अनुभूतियोंको जागृत करती हैं। हमने शुरूमें ही लक्ष्य किया है कि सहृदयके चित्तमें वासनारूपमें स्थित भावको ही कविता अुद्‌बुद्‌ध करती है। जो बात हमारे मनको आनंदसे हिल्लोलित कर देती है वह हमारी अपनी होती है। अिसलिये यद्‌यपि आजके अच्छे मुक्तक-लेखक कविकी विषय-ग्राहिता परम्परा-समर्थित न होकर आत्मानुभूतिमूलक है—वस्तुतः यह आत्मानुभूति सदा ही कविमें रही है, फिर वह आजका युग हो या हजार वर्ष पहलेका—तथापि वह पाठकके भीतर जो भाव है अुसीको अुद्‌बुद्ध करके रस-संचार करता है।

अिस बातको किसी अंग्रेज समालोचकने अिस प्रकार कहा है कि आधुनिक प्रगीत मुक्तकोंकी अपनी अनुभूतिके बलपर कवि सहृदय पाठकके हृदयमें प्रवेश करता है और अुसके हृदयमें स्थित अुसी भावके अनुभव करनेवाले कविके साथ अेकात्मताका संबंध स्थापित करता है। अिस बातको

अिस प्रकार भी कहा गया है कि यद्यपि आजका प्रगीत मुक्तक व्यक्तिगत विषय-ग्राहिताका परिणाम है, परन्तु वह अुतना ही सामाजिक है जितना रीतिकालीन रूढ़ियोंकी योजनाके भीतरसे गृहीत-मुक्तक होता था। अिस प्रकार दोनोंमें समानताकी मात्रा कम नहीं है। व्यक्तिगत होनेके कारण अिन अनुभूतियोंका क्षेत्र बहुत बढ़ गया है।

पुराने मुक्तकमें जिन विभावोंकी योजना केवल अुद्दीपनके रूपमें होती थी और जिन अनुभावोंका वर्णन केवल मानवीय मनोरागोंकी अपेक्षामें ही होता था वे विभाव अब आलंबनके रूपमें योजित होने लगे हैं। और वे अनुभाव अब मनुष्यसे बाहरके जगत्के कल्पित मनोरागोंके संबंधमें वर्णित किये जाने लगे हैं। अैसा करनेके कारण भाषामें अधिकाधिक लक्षणात्मकता आने लगी है, क्योंकि जड़ प्रकृतिको यदि आलंबन बनाकर अुसमें अनुभावा और हावोंकी योजना की जायगी तो लक्षणा-वृत्तिका आश्रय लेना पड़ेगा। किसी-किसी वृद्ध आचार्यको अिस प्रकारकी योजना पसंद नहीं आयी है।

§५१. परिस्थितियोंके बदलनेके कारण कविने ही अपनी कारीगरीका माध्यम नहीं बदला है; आजका सहृदय भी प्राचीन कालके सहृदयसे भिन्न हो गया है। अेकाध अुदाहरण लेकर अिसे समझा जाय—

माअे घरोवअरणं अज्जहु णत्थित्ति साहिअं तुमअे।
ता भण किं करणिज्जं अेमेअ ण वासरो ठाअि॥

—'माँ, यह तो तुमने पहले ही बता रखा है कि आज घरके काम-धन्धेकी कोअी सामग्री नहीं। तो बताओ, मुझे क्या करना है, दिन तो यों ही पड़ा नहीं रहेगा!'

काव्य-प्रकाशके आचार्य मम्मटने अिस कविताको व्यंग्यार्थके प्रसंगमें अुद्धृत किया है। अुन्होंने अिसमें यह ध्वनि बताअी है कि लड़की

अपने प्रियसे मिलनेको व्याकुल है, अतअेव वह गृहकार्यका बहाना बनाकर बाहर जाना चाहती है। श्लोकसे यह बात साफ मालूम होती है कि घरमें गृहकर्मके अुपकरण नहीं हैं। यह बात बाहर जानेके लिये ज़रूरतसे ज्यादा कारण हो सकती है। पर आज तक किसी सहृदयने मम्मटकी बातपर संदेह नहीं किया, क्योंकि कविने जिस 'स्पिरिट' में कविता लिखी थी अुसे अुन्होंने ठीक हीं पकड़ा था। अुस युगमें कोअी भी समालोचक अिसमें आत्मा और परमात्माकी मिलन-विरह-वेदनाका आभास पाकर अुपहासास्पद बनना पसंद न करता; क्योंकि अुस युगमें आत्मा-परमात्मा सर्वत्र मिलते थे, अिस श्लोकमें न भी मिलते तो कवि या सहृदयको कोअी चिन्ता न थी। अेक नअी कविता नीचे अुद्धृत की जा रही है। अिसमें विहारार्थिनीकी व्यंजना अधिक साफ हो सकती थी, पर कोअी सहृदय अैसा व्यंग्यार्थ निकालकर अिस युगमें अुपहासास्पद हुअे बिना न रहेगा—

आमि कोन् छले याब घाटे ?
शाखा थरथर पाता मरमर—
छाया सुशीतल बाटे !
बेला बेशि नाअि, दिन हल शोध,
छाया बेड़े याय, पड़े आसे रोद,
अे बेला केमन काटे ?
आमि कोन् छले याब घाटे ?

(रवीन्द्रनाथ)

—'मैं किस बहाने घाटपर जाअूँ ? किस छलसे अुस रास्तेपर जाअूँ, जहाँ शाखाअें थरथर काँप रही हैं, पत्ते मर्मर-ध्वनि कर रहे हैं। अब अधिक समय नहीं है, दिन समाप्त हो चला है, छाया बढ़ती जा रही है, हाय वह समय कैसे कटेगा ?— मैं किस बहाने घाटपर जाअूँ ?'

§५२. अूपर रवीन्द्रनाथकी जो कविता अुद्धृत की गअी है अुसमें निश्चय ही अेक प्रकारका प्रेम व्यंग्य है। वह प्रेम मनुष्यका ही है, पर अुसका आलंबन मनुष्य नहीं है, बल्कि नदी है, घाट है, रास्ता है; वृक्ष हैं, झुरमुट हैं। मध्ययुगमें अिन वस्तुओंको केवल अुद्दीपन-विभाव (दे० § २७) के रूपमें देखनेकी चलन हो गअी थी। मनुष्यके प्रेमका आलंबन मनुष्य ही हो सकता है, यह बात कुछ जँचती नहीं मालूम होती।

आचार्य रामचंद्र शुक्लजीने प्रेम-प्रतिष्ठाके दो कारण बताये हैं— (१) सुंदर रूपके अनुभव द्वारा और (२) साहचर्य द्वारा। शुक्लजीका कहना है कि सुन्दर रूपके आधारपर जो प्रेम-भाव या लोभ प्रतिष्ठित होता है अुसकी कारण-परम्परा पहचानी जा सकती है, हम अुसका क्रम देख सकते हैं। परन्तु जो प्रेम केवल साहचर्यके प्रभावसे अंकुरित और पल्लवित होता है वह अेक प्रकारसे हेतु-ज्ञान-शून्य होता है। 'यदि हम किसी किसानको अुसकी झोपड़ीसे हटाकर किसी दूर देशमें ले जाकर राजभवनमें टिका दें तो वह अुस झोपड़ीका, अुसके छप्परपर चढ़ी हुअी बेलका, सामनेके नीमके पेड़का, द्वारपर बँधे हुअे चौपायोंका ध्यान करके आँसू बहाअेगा। वह यह कभी नहीं समझता कि मेरा यह झोंपड़ा अिस राजभवनसे सुंदर था, परंतु फिर भी अिस झोपड़ेका प्रेम अुसके हृदयमें बना हुआ है। वह प्रेम रूप-सौंदर्यगत नहीं है; सच्चा, स्वाभाविक और हेतु-ज्ञान-शून्य प्रेम है। अिस प्रेमको रूप-सौंदर्यगत प्रेम नहीं पहुँच सकता।' रवीन्द्रनाथकी कवितामें यही प्रेम प्रकट हुआ है।

ब्रजभाषाकी कविताओंमें यह भाव है ही नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता; पर कम है, यह बात ठीक है। श्रीकृष्णने जब कहा था कि 'कोटिनहू कलधौतके धाम करीलकी कुंजन अूपर वारौं', तो वहाँ करीलके

कुंज ही अुनके प्रेमके आलंबन थे। यह व्याख्या अुतनी मनोहर नहीं है कि करीलके कुंज अुन्हें अिसलिये प्रिय थे कि वे गोपियोंके साथ जो प्रेमलीला होती थी अुसे अुद्दीप्त करनेके साधन थे। प्रकृतिके विभिन्न रूपोंके लिये हमारे चित्तमें जो आकर्षण है वह केवल अिसलिये नहीं कि वे हमारे मानवाश्रित प्रेमको अुत्तेजित करते हैं, बल्कि अिसलिये कि हमारे अंतःकरणमें निहित वासनाको अुसी प्रकार अुद्बुद्ध करते हैं जिस प्रकार नायक-नायिकाके प्रेमालाप हमारे अन्तःकरणमें वासना-रूपसे स्थित स्थायीभावको अुद्बुद्ध करते हैं। अिसलिये ये भी हमारी रसानुभूतिके कारण हैं।

पं. रामचन्द्र शुक्लने लिखा है कि "वनों, पर्वतों, नदी-नालों, कछारों पटपरों, खेतों, खेतोंकी नालियों और घासके बीचसे गअी हुअी दुर्रियों, हल-बैलों, झोपड़ों और श्रममें लगे हुअे किसानों अित्यादिमें जो आकर्षण हमारे लिये है वह हमारे अन्तःकरणमें निहित वासनाके कारण है, असाधारण चमत्कार या अपूर्व शोभाके कारण नहीं। जो केवल पावसकी हरियाली और वसन्तके पुष्प-हासके समय ही वनों और खेतोंको देखकर प्रसन्न हो सकते हैं, जिन्हें केवल मंजरी-मंडित रसालों, प्रफुल्ल कदंबों, और सघन मालती-कुंजोंका ही दर्शन प्रिय लगता है; ग्रीष्मके खुले हुअे पटपर, खेत और मैदान, शिशिरकी पत्र-विहीन नंगी वृक्षावली और झाड़-बबूल आदि जिनके हृदयको कुछ भी स्पर्श नहीं करते अुनकी प्रवृत्ति राजसी समझनी चाहिये। वे अपने विलास या सुखकी सामग्री प्रकृतिमें ढूँढ़ते हैं, अुनमें अुस सत्वकी कमी है जो सत्तामात्रके साथ अेकीकरणकी अनुभूतिद्वारा लीन करके आत्मसत्ताके विभुत्वका आभास देती है।

"संपूर्णसत्ता, क्या भौतिक क्या आध्यात्मिक, अेक ही परम सत्ता या परम भाव (दे० § ५-६) के अन्तर्गत है। अतः ज्ञान या तर्कबुद्धि द्वारा

हम जिस अद्वैत-भावतक पहुँचते हैं, अुसी भावतक अिस 'सत्त्व' गुणके बलपर हमारी रागात्मिका वृत्ति भी पहुँचती है (तुल० § २९)। अिस प्रकार अन्ततः वृत्तियोंका समन्वय हो जाता है। यदि हम ज्ञान द्वारा सर्वभूतको आत्मवत् जान सकते हैं तो रागात्मिका वृत्ति द्वारा अुसका अनुभव भी कर सकते हैं। तर्कबुद्धिसे हारकर परम ज्ञानी भी अिस स्वानुभूतिका आश्रय लेते हैं। अतः परमार्थ दृष्टिसे, दर्शन और काव्य दोनों अन्तःकरणकी भिन्न-भिन्न वृत्तियोंका आश्रय लेकर, अेक ही लक्ष्यकी ओर ले जानेवाले हैं। अिस व्यापक दृष्टिसे काव्यका विवेचन करनेसे लक्षण-ग्रंथोंमें निर्दिष्ट संकीर्णता कहीं-कहीं बहुत खटकती है। वन, अुपवन, चाँदनी अित्यादिको दाम्पत्य रतिके अुद्दीपन मात्र माननेसे सन्तोष नहीं होता।"

§ ५३. विषयि-प्रधान कवि प्रकृतिको आलंबनके रूपमें चित्रित करने लगा है। लेकिन यह युग वैयक्तिक-स्वाधीनताका है। आधुनिक कविने प्राचीन साहित्यिक रूढ़ियोंकी अुपेक्षा की है, अुसने अपने देखनेका ढंग भी अपना ही रखा है। अिसका परिणाम यह हुआ है कि आलंबन होनेपर भी प्रकृतिका बिंबग्रहण सबने अेक ही ढंगसे नहीं किया है। देखनेके ढंगके बदलनेके कारण द्रष्टव्यके नाना पहलू नाना भावसे प्रधान होकर हमारे अनुराग-विरागके साधन बने हैं। अिन भेदोंको गिन सकना संभव नहीं है। कुछ मोटे भेद अिस प्रकार बताअे जा सकते हैं :—

(१) वाच्यार्थ-प्रधान दृष्टि, (२) लक्ष्यार्थ-प्रधान दृष्टि और (३) व्यंग्यार्थ-प्रधान दृष्टि।

विषयि-प्रधान कविके सामने यह सारा विश्व मानो अेक काव्य-ग्रंथ है। वह अिस काव्य-ग्रंथका अर्थ अपने ढंगसे समझता है।

(१) वाच्यार्थ-प्रधान दृष्टिवाले कवि अिस जगत्‌को यह जैसा है वैसा ही देखते हैं। अिसके नद-नदी, पहाड़-जंगल, अपने-आपमें परिपूर्ण और महनीय हैं। वे जैसे हैं वैसे ही महान् हैं। अभिव्यक्तिवादी कवि अिसी श्रेणीके हैं।

(२) लक्ष्यार्थ-प्रधान दृष्टिवाले कवि मानते हैं कि यह जगत् अपने-आपमें बाधित है। प्रकृति लाख-लाख बीज प्रतिवर्ष पैदा करती है। अुनमेंसे अधिकांश नष्ट हो जाते हैं। कुछ थोड़ेसे जीवित रह पाते हैं। यह लाख-लाख नष्ट होनेवाले बीज कुछ असत्य हों, अैसी बात नहीं; परन्तु वे अपने-आपमें ही संपूर्ण सत्य नहीं हो सकते। किसी विराट् प्रयोजनके लिये यह महानाशका कार-बार चल रहा है। अिन कवियोंके मतसे अिस सृष्टिकी सिद्धिके लिये दूसरे किसीका आक्षेप अपेक्षित है, या फिर दूसरेकी सिद्धिके लिये यह अपना अर्थ ही खो देती है।

(३) व्यंग्यार्थ-प्रधान दृष्टिवाले कविके लिये यह जगत् केवल अेक अुपलक्ष्य-मात्र है, अेक अिशारा-भर है, सत्य है अिसके पीछे प्रच्छन्न रहस्य। अिस जगत्‌की प्रत्येक वस्तु परमार्थतः अुस प्रच्छन्न रहस्यकी ओर ही संकेत कर रही है। संसारकी प्रत्येक वस्तु मानो अुस अपरिचित रहस्यकी ओर ध्यान खींचनेवाली अंगुली है जो स्वयं कुछ न होकर अुसीको दिखा रही है। अनादि कालसे मानव-चित्तमें यह रहस्य वर्तमान है। आदि-मानवके मनोजगत्‌की यह रहस्य-भावना मध्ययुगतक नाना स्तरोंको पार करती हुअी लीलामय भगवान्‌के रूपमें प्रकट हुअी थी। आज संसारमें जब अुस अतृप्त भावनाके लिये अकुण्ठ मार्ग नहीं रह गया है तो वह रसमय काव्य-संसारमें पूर्ण रूपसे आत्मप्रकाश करने लगी है।

§ ५४. हिन्दीमें जब नवीन युगकी हवा बही तो जो विषयि-प्रधान कविताअें भी लिखी जाने लगीं, वे सभी कविताअें अेक ही श्रेणीकी

नहीं थीं। कुछ वाच्यार्थ-प्रधान थीं, कुछ व्यंग्यार्थ-प्रधान। पर सबमें प्राचीन रूढ़ियोंकी अुपेक्षा की गअी थी। किसीने अिस प्रकारकी सब कविताओंका नाम 'छायावाद' रख दिया। बादमें व्यंग्यार्थ-प्रधान दृष्टि रखनेवाले कवियोंको यह नाम अुपयुक्त नहीं लगा। अुन्होंने संशोधन करके 'रहस्यवाद' नाम दिया। कुछ दिनतक ये दोनों ही शब्द चलते रहे। अबतक पंडितोंने दोनों शब्दोंका अलग-अलग अर्थ नियत कर दिया है।

पं. रामचन्द्र शुक्लके मतसे छायावादके दो अर्थ होते हैं—(१) अेक तो रहस्यवादके अर्थमें जहाँ अुसका सम्बन्ध काव्य-वस्तुसे होता है, अर्थात् जहाँ कवि किसी अज्ञात और अनन्त प्रियतमको अवलम्ब बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषामें अनेक प्रकारसे प्रेमकी व्यंजना करता है; और (२) दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति-विशेषके व्यापक अर्थमें है। छायावादका सामान्यतः यह अर्थ हुआ—प्रस्तुतके स्थानपर अुसकी व्यंजना करनेवाली छायाके रूपमें अप्रस्तुत (दे० § ३२) का कथन। शुक्लजीने लिखा है कि 'छायावादका' पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो चलनेवाली श्री महादेवी ही हैं। पन्त, प्रसाद निराला अित्यादि और सब कवि प्रतीक-पद्धति या चित्र-भाषा-शैलीकी दृष्टिसे ही छायावादी कहलाअे।'

यह प्रतीक-पद्धति क्या है? शुक्लजीके ही शब्दोंमें कहा जाय तो 'चित्र-भाषा-शैली या प्रतीक-पद्धतिके अन्तर्गत जिस प्रकार वाचक पदोंके स्थानपर लक्षक पदोंका (दे० § २१-२२) व्यवहार होता है, अुसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंगपर अप्रस्तुत चित्रोंका विधान भी। अतः अन्योक्ति-पद्धतिका अवलंबन ही छायावादका अेक विशेष लक्षण हुआ।'

वस्तुतः आचार्य शुक्ल छायावादको अेक शैली-विशेष ही अधिक समझते थे। अिस शैलीकी मुख्य विशेषताअें ये हैं—लाक्षणिकता, प्रभाव-

रहस्यपर जोर, प्रकृतिके वस्तु-व्यापारोंपर मानुषी वृत्तियोंका आरोप, प्रेम-गीतात्मक प्रवृत्ति।

किन्तु श्री महादेवी वर्माके मतसे छायावादकी तीन विशेषताअें हैं—(१) व्यक्तिगत अनुभवमें प्राण-संचार, अर्थात् कवि व्यक्ति रूपमें जो अनुभव करता है वह अुसके अपने जीवनकी देन है, वह किसी रूढ़ि या शास्त्रके बताअे हुअे विषयको घोखता नहीं रहता; (२) प्रकृतिके अनेक रूपमें अेक महाप्राणका अनुभव, और (३) ससीम और असीमका अैसा सम्बन्ध जिसमें अेक प्रकारके अलौकिक व्यक्तित्वका आरोप हो। अिस प्रकार महादेवी वर्मा छायावादको शैली-विशेष ही नहीं मानतीं, वे काव्य-वस्तुकी ओरसे भी अिसपर विचार करती हैं। रहस्यवाद अिसके बादकी वस्तु है। महादेवीजी कहती हैं कि मनुष्य-मनुष्यके बीच जो रागात्मक संबंध है, अुसमें जबतक अनुरागजन्य विसर्जनका भाव नहीं घुल जाता तबतक वे सरस नहीं हो पाते। परन्तु मनुष्यके हृदयका अभाव तबतक दूर नहीं होता जबतक यह संबंध सीमाहीनके प्रति न हो। सो, अुस सीमाहीन अनन्त सत्तामें अेक मधुर व्यक्तित्वका आरोप करके अुसके प्रति जो अनुरागजन्य सरस आत्म-निवेदनमूलक कविताअें हैं अुन्हींमें रहस्यवाद होता है।

§ ५५. मुझे अैसा लगता है कि रहस्यवादी कविताका केन्द्र-बिंदु वह वस्तु है जिसे भक्ति-साहित्यमें 'लीला' कहते हैं। यद्यपि रहस्यवादी, भक्तोंकी भाँति पद-पदपर भगवान्‌का नाम लेकर भाव-विह्वल नहीं हो जाता, परन्तु वह मूलतः है भक्त ही। अुसका भगवान्‌पर अविचलित विश्वास होता है। ये भगवान् अगम-अगोचर तो हैं ही, वाणी और मनके अतीत भी हैं; फिर भी रहस्यवादी कवि अुनको प्रतिदिन, प्रतिक्षण देखता

रहता है। वे ज्ञानके अगम्य होकर भी प्रेमके वशीभूत हैं, क्योंकि ज्ञान सब मिलाकर हमारी अल्पज्ञताको ही दिखा देता है, पर प्रेम समस्त त्रुटियों और विच्युतियोंको भर देता है। संसारमें जो कुछ घट रहा है, और घटना संभव है, वह सब अुस परम प्रेममयकी लीला है—अुसे खोलनेमें आनन्द आता है। भक्त अुससे प्रेम करके अपनी समस्त त्रुटियोंको पूर्ण करता है। अिसीलिये महादेवी वर्माने कहा है कि मनुष्यके हृदयका अभाव तबतक दूर नहीं होता जबतक सीमाहीनके प्रति रागात्मक संबंध न हो। सीमाहीन अर्थात् परम-प्रेममय भगवान्। भगवान्के साथकी यह निरन्तर चलनेवाली प्रेम-केलि ही रहस्यवादी कविताका केन्द्र-बिंदु है। अिसीको किसी और अुपयुक्त शब्दके अभावमें पश्चिमके समालोचकोंने 'मिस्टिसिज्म' कहा है, और अिसीको ठीक-ठीक न समझनेके कारण, न जाने किसने, रहस्यवाद नाम दे दिया था। यह नाम भ्रामक है, क्योंकि 'लीला' कोअी रहस्य नहीं है। रहस्य शंकाका नाम है, लीला समाधानका। आधुनिक हिंदी कवितामें अिस तत्त्वका सर्वोत्तम विकास महादेवी वर्माकी कविताओंमें ही मिलता है।

§५६. विषयि-प्रधानताके साथ-साथ काव्यका क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो गया है। केवल चेतन मनके विचार, अनुभव या प्रभाव ही अुसका विषय नहीं हो गअे हैं। फ्रायडके मनोविज्ञानने बताया है कि मनुष्यके मनका चेतन रूप अुसके अूपर-अूपरका हिस्सा है। नीचेका हिस्सा अवचेतन मन है जो बहुत शक्तिशाली वस्तु है। अिस अवचेतन मनकी अस्पष्ट और असम्बद्ध अनुभूतियाँ भी विषयि-प्रधान काव्यका विषय होने लगी हैं। स्वप्न, आविष्ट-भाव और दिवास्वप्नकी असंबद्ध बातें तो काव्यका मनोहर विषय समझी ही जाने लगी हैं; नाना भौतिक मनोवैज्ञानिक और अंकशास्त्रीय प्रतीकोंकी

भरमारने काव्यके क्षेत्रमें नवीन जटिलताका सूत्रपात किया है। प्रतीकोंने शब्दोंको दबोच दिया है। हमने शुरूमें ही लक्ष्य किया है कि शब्द और अर्थ दोनोंको लेकर साहित्य बनता है। जहाँ शब्दोंकी पूरी अुपेक्षा हुअी हो वहाँ कविता संभव ही नहीं है। अिस जटिलताके द्वारा नग्न यथार्थवादी काव्य-साहित्यको संपूर्ण रूपसे पराहत कर देनेके कारण ये कविताअें अति यथार्थवादी कही जाने लगी हैं। फ्रायडके मनोविज्ञान-शास्त्रने अवचेतन मनके जिन प्रतीकोंकी स्थापना की है अुनका खुलकर व्यवहार होने लगा है।

§ ५७. हमने अबतक काव्यके भिन्न-भिन्न अुपकरणोंपर विचार किया है। ये अुपकरण काव्यको और कविके अुद्दिष्ट अर्थको समझनेमें सहायक हैं। अिन अुपकरणों और शैलियोंको ही मुख्य माननेकी ज़रूरत नहीं। काव्य कोअी संकीर्ण बुद्धि-विलास नहीं है। वह मनुष्यके जीवनके सब कुछको लेकर बनता है। आदि कवि वाल्मीकिको आम्नायसे भिन्न छन्द मिला था, यह कहानी सबकी जानी हुअी है। परन्तु अुन्हें अुपयुक्त विषय नहीं मिल रहा था। वे अुन्मत्तकी भाँति घूम रहे थे। अुसी समय नारदसे अुनका साक्षात्कार हुआ। नारदने अुन्हें विषय सुझाया था। अुन्होंने कहा था कि अबतक देवताओंको मनुष्य बनाया गया है अब तुम मनुष्यको देवता बनाओ!

मनुष्यको देवता बनाना ही काव्यका सबसे बड़ा अुद्देश्य है। मनुष्यको अुसकी स्वार्थ बुद्धिसे अूपर अुठाना, अुसको अिहलोककी संकीर्णताओंसे अूपर अुठाकर सत्त्वगुणमें प्रतिष्ठित करना, अुसे परदुःखकातर और संवेदनशील बनाना और निखिल जगतके भीतर चिर-स्तब्ध 'अेक' की अनुभूतिके द्वारा प्राणिमात्रके साथ आत्मीयताका अनुभव कराना ही काव्यका

काम है। छंद, अलंकार, पद-लालित्य और शैलियाँ अिसी महान अुद्देश्यकी पूर्तिके साधन हैं। अिस अुद्देश्यको वह अन्यान्य मनीषियोंकी भाँति दीर्घ व्याख्या करके नहीं सिद्ध करता, बल्कि अिन साधनोंकी सहायतासे वह महान् सत्यको आसानीसे व्यंग्य करता रहता है। यह हम पहले ही लक्ष्य कर चुके हैं कि अुत्तम व्यंग्य या ध्वनि ही काव्यका प्राण है।

६. अुपन्यास और कहानी

§५८. अुपन्यास और कहानियाँ हमारे साहित्यमें नअी चीज़ हैं। पुराने साहित्यमें कथा, आख्यायिका आदिके रूपमें अिस जातिका साहित्य मिलता है, पर अुनमें और आधुनिक कथाओं—अुपन्यास और कहानियों—में मौलिक भेद है। मौक़ा पाकर हम अिस भेदके समझनेका प्रयत्न करेंगे। अभी तो हम आधुनिक ढंगके अुपन्यासों और कहानियोंकी ही चर्चा करने जा रहे हैं।

§५९. अुपन्यास अिस युगका बहुत ही लोकप्रिय साहित्य है। शायद ही कोअी पढ़ा-लिखा नौजवान अिस ज़मानेमें अैसा मिले जिसने दो चार अुपन्यास न पढ़े हों। यह बहुत मनोरंजक साहित्यांग माना जाने लगा है। आजकल जब किसी पुस्तकको बहुत मनोरंजक पाया जाता है तो प्रायः कह दिया जाता है कि अिस पुस्तकमें अुपन्यासका-सा आनंद मिल रहा है। किसी-किसी यूरोपियन समालोचकने अुपन्यासका अेकमात्र गुण अुसकी मनोरंजकताको ही माना है। अिस साहित्यांग (अुपन्यास) ने मनोरंजनके लिये लिखी जानेवाली कविताओंका ही नहीं, नाटकोंका भी रंग फीका कर दिया है; क्योंकि पाँच मील दौड़कर रंगशालामें जानेकी अपेक्षा पाँचसौ मील दूरसे अैसी किताब मँगा लेना कहीं अधिक आसान हो गया है जो अपना रंगमंच अपने पन्नोंमें ही लिये हुअे हो।

.... अुपन्यासमें अुन टंटोंकी कोअी ज़रूरत नहीं रह जाती जो रंगमंच सजानेमें आ खड़े होते हैं। किसीने बिल्कुल ठीक कहा है कि आजके ज़मानेमें

अुपन्यास अेक ही साथ शिष्टाचारका सम्प्रदाय, बहसका विषय, अितिहासका चित्र और पाकेटका थियेटर है। मशीनने ही अिस जातिके साहित्यका अुत्पादन बढ़ाया है और अुसीने अिसके वितरणका पथ प्रशस्त किया है। अुपन्यास-साहित्यमें मशीनकी विजय-ध्वजा है। अैसे लोकप्रिय साहित्यको समझनेका प्रयत्न क्या करना भला ! किन्तु दुनियामें प्रायः ही अैसा देखा जाता है कि सबसे प्रिय वस्तुको समझनेमें ही आदमी सबसे अधिक गलती करता है। प्रिय वस्तुओंके प्रति अेक प्रकारका मोह हुआ करता है जो ज्ञानका परिपंथी है। अुपन्यासके समझनेमें भी बहुत गलतियाँ की जाती हैं। सीधी लकीरका खींचना सचमुच टेढ़ा काम है !

§६०. परंतु अुपन्यास है क्या चीज़ ? हिन्दीके श्रेष्ठ औपन्यासिक प्रेमचंदजीने लिखा है कि "अुपन्यासकी अैसी कोअी परिभाषा नहीं है जिसपर सब लोग सहमत हों।" फिर भी अुन्होंने अुसे समझानेका प्रयत्न किया है। वे कहते हैं:—

"मैं अुपन्यासको मानव-चरित्रका चित्रमात्र समझता हूँ। मानव-चरित्रपर प्रकाश डालना और अुसके रहस्योंको खोलना ही अुपन्यासका मूल तत्त्व है। किन्हीं भी दो आदमियोंकी सूरतें नहीं मिलतीं, अुसी भाँति आदमियोंके चरित्र नहीं मिलते। जैसे सब आदमियोंके हाथ, पाँव, आँखें, कान, नाक, मुँह होते हैं, पर अितनी समानता रहनेपर भी विभिन्नता मौजूद रहती है, अुसी भाँति सब आदमियोंके चरित्रोंमें भी बहुत कुछ समानता होते हुअे भी कुछ विभिन्नताअें होती हैं। यही चरित्र-संबंधी समानता और विभिन्नता—अभिन्नत्वमें भिन्नत्व और विभिन्नत्वमें अभिन्नत्व—दिखाना अुपन्यासका मुख्य कर्तव्य है।

"संतान-प्रेम मानव-चरित्रका अेक व्यापक गुण है। अैसा कौन प्राणी होगा जिसे अपनी सन्तान प्यारी न हो। लेकिन अिस संतान-प्रेमकी मात्राअें हैं, अुसके भेद हैं। कोअी तो संतानके लिये मर मिटता है, अुसके लिये कुछ छोड़ जानेके लिये आप नाना प्रकारके कष्ट झेलता है, लेकिन धर्मभीरुताके कारण अनुचित रीतिसे धन-संचय नहीं करता। अुसे शंका होती है कि कहीं अिसका परिणाम हमारी सन्तानके लिये बुरा न हो। कोअी औचित्यका लेशमात्र भी विचार नहीं करता और जिस तरह भी हो कुछ धन-संचय करना अपना ध्येय समझता है, चाहे अिसके लिये अुसे दूसरोंका गला ही क्यों न काटना पड़े। वह सन्तान-प्रेमपर अपनी आत्माको भी बलिदान कर देता है। अेक तीसरा सन्तान-प्रेम वह है जहाँ सन्तानकी सच्चरित्रता प्रधान कारण होती है, जब कि पिता अुसका कुचरित्र देखकर अुससे अुदासीन हो जाता है, अुसके लिये कुछ छोड़ जाना या कर जाना व्यर्थ समझता है। अिसी प्रकार अन्य मानवी गुणोंकी भी मात्राअें और भेद हैं। चरित्राध्ययन जितना ही सूक्ष्म और जितना ही विस्तृत होगा अुतनी ही सफलतासे चरित्रोंका चित्रण हो सकेगा। संतान-प्रेमकी अेक दशा यह भी है जब पिता पुत्रको कुमार्गपर चलते देखकर अुसका घातक शत्रु हो जाता है। और वह भी सन्तान-प्रेम ही है जब पिताके लिये पुत्र घीका लड्डू होता है, जिसका टेढ़ापन अुसके स्वादमें बाधक नहीं होता। अेक अैसा सन्तान-प्रेम भी देखनेमें आता है जहाँ शराबी और जुआड़ी पिता पुत्र-प्रेमके वशीभूत होकर सारी बुरी आदतें छोड़ देता है।"

अिस प्रकार प्रेमचंदजी अुपन्यासको बहु-विचित्र मनुष्य-जीवनका चित्रमात्र मानते हैं। यह चित्र सुंदर हुआ है या नहीं और यदि सुंदर हो सका है तो पाठककी अुत्कर्ष-सिद्धिमें कहाँतक सहायक हुआ है, यह बात फिर भी विचारणीय रह जाती है।

§६१. अुपन्यास और कहानियोंकी हम अिस अध्यायमें अेक साथ विवेचना करने जा रहे हैं। अिसका कारण यह है कि दोनों वस्तुतः अेक ही जातिकी चीज़े हैं। शुरू-शुरूमें तो छोटे अुपन्यासको ही 'कहानी' कहते थे। परन्तु छापेके कल तथा सामयिक पत्र-पत्रिकाओंके प्रचारने छोटी कहानियोंका बहुत प्रचार किया और धीरे-धीरे वे अुपन्याससे स्वतंत्र हो गयीं। बादमें चलकर यह निश्चय हो गया कि आकारमात्र ही कहानीकी विशेषता नहीं है। कहानीका अपना अेक लक्ष्य होता है। अिस लक्ष्यकी पूर्तिके लिये कहानी-लेखक कम-से-कम पात्रों और घटनाकी योजना करता है। वह लक्ष्य ही प्रधान होता है, घटना और पात्र निमित्तमात्र। अिस प्रकार अुपन्यास और कहानीका प्रधान अन्तर यह होता है कि अुपन्यासमें चरित्रों और घटनाओंका प्राधान्य रहता है, वे केवल निमित्तमात्र नहीं होते, बल्कि अुन्हें स्वच्छन्द रूपसे विकसित होनेका मौक़ा मिलता है, जब कि ये दोनों ही तत्त्व कहानीमें प्रधान न हो कर निमित्तमात्र बने रहते हैं।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि यह नहीं कहा जा रहा है कि कहानीमें पात्र और घटना गौण होते हैं, बल्कि यह कहा जा रहा है कि वे निमित्तमात्र होते हैं; असली बात लक्ष्य होती है। और अुसे लक्ष्यकी सिद्धिके लिये पात्र और घटना जितने सहायक होते हैं अुतने ही रखे जाते हैं। लेखकका व्यक्तिगत मत अिसमें अधिक स्पष्ट होता है। कुछ समालोचकोंने अेक अुपमा देकर अिस बातको समझानेकी चेष्टा की है। अुपन्यास अेक शाखा-प्रशाखावाला विशाल वृक्ष है, जब कि छोटी कहानी अेक सुकुमार लता। कुछ दूसरे समालोचकोंने बताया है कि अुपन्यास और कहानीका वही संबंध है जो महाकाव्य और गीतिकाव्यका। अिन अुपमाओंके बहाने जो बात कही गअी है अुसे स्पष्ट भाषामें अिस प्रकार रखा जा सकना है:— अुपन्यास

और कहानी दोनों अेक ही जातिके साहित्य हैं; परन्तु अुनकी अुपजातियाँ अिसलिये भिन्न हो जाती हैं कि अुपन्यासमें जहाँ पूरे जीवनकी नाप-जोख होती है, वहाँ कहानीमें अुसकी सिर्फ अेक झाँकी मिल जाती है। मानव-चरित्रके किसी अेक पहलूपर या अुसमें घटित किसी अेक घटनापर प्रकाश डालनेके लिये छोटी कहानी लिखी जाती है।

देखा गया है कि अच्छे अुपन्यासकार सब समय अच्छे कहानी-लेखक नहीं हो सके हैं, ठीक अुसी प्रकार, जिस प्रकार अच्छे महाकाव्य-लेखक सब समय अच्छे गीतिकाव्य-लेखक नहीं हुअे हैं। यह तथ्य अिस बातका सबूत है कि कहानी और अुपन्यासके लिखनेमें भिन्न-भिन्न कोटिकी प्रतिभा आवश्यक होती है। प्रेमचंदजीने कहा है कि कहानीमें बहुत विस्तृत विश्लेषणकी गुंजाअिश नहीं होती। कहानी-लेखकका अुद्देश्य संपूर्ण मनुष्य-जीवनको चित्रित करना नहीं, वरन् अुसके चरित्रके अेक अंग-मात्रका दिखाना होता है।

नये आलोचकोंके मतसे अिधर कहानीकी कारीगरीवाले दृष्टिकोणमें थोड़ा और परिवर्तन हुआ है। अब प्रतिभाकी अपेक्षा चतुरता और कारीगरीका मूल्य ज्यादा आँका जाने लगा है। अिसका नतीजा यह हुआ कि अुन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दीके आरंभकालके लेखकोंकी लिखी हुअी अत्यन्त श्रेष्ठ कहानियोंको भी कहानी-कलाकी दृष्टिसे फीका समझा जाने लगा है।

“ अुन्नीसवीं शताब्दीके श्रेष्ठ कहानी-लेखक अपनी रचनाओंमें मनोरंजकता, रहस्यमय कथानक, मानव-हृदयका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, गहरे यथार्थवाद और अनोखी सूझोंका समावेश करके कहानियोंके क्षेत्रमें यथेष्ट

सफलता प्राप्त कर लेते थे। परन्तु कहानी-कलाके वर्तमान आलोचकोंकी रायमें अिन सारी बातोंकी महत्ता बहुत कम रह गअी है। अिन चीज़ोंको व्यर्थ या निस्सार तो आजका समालोचक भी नहीं कहता, परन्तु अब वह कहानीके कलेवर को अुसकी आत्मासे भी अधिक महत्त्व देने लगा है"
(चंद्रगुप्त विद्यालंकार)।

परन्तु आजके समालोचकका यह मत केवल सामयिक नवसर्जन-मनोवृत्तिका परिणाम है। अिस युगमें सबको सब समय कुछ नया गढ़नेका पागलपन प्राप्त किअे हुअे है। कोअी आश्चर्य नहीं कि साहित्यके क्षेत्रमें अिस मनोवृत्तिने प्रतिभाको कारीगरीके सामने गौण बना दिया है। सही बात, जैसा कि चन्द्रगुप्त विद्यालंकारजीने कहा है, यह है कि जो प्रतिभा नअी-नअी कारीगरियोंको जन्म देती है; वह सदा प्रधान रहेगी।

§६२. अुपन्यास हो या कहानी, अुसकी आलोचना करते समय हम अेक बात भूल नहीं सकते। वह यह कि अुपन्यास या कहानी, और कुछ हो या न हो, अेक कहानी या कथा ज़रूर है। कहानी या कथामें जो बातें आवश्यक हैं वे अुनमें अवश्य होनी चाहिये। कोअी अुपन्यास (या छोटी कहानी) सफल है या नहीं, अिस बातकी प्रथम कसौटी यह है कि कहानी कहनेवालेने कहानी ठीक-ठीक सुनाअी है या नहीं—अनावश्यक बातोंको तूल तो नहीं दिया है, जहाँ-जहाँ कहानी अधिक मर्मस्पर्शी हो सकती थी वहाँ-वहाँ अुसने अुसे अुचित रीतिसे सम्हाला है या नहीं, छोटी-छोटी बातोंमें ही अुलझकर तो नहीं रह गया, प्रसंगवश आअी हुअी घटनाका अितना अधिक वर्णन तो नहीं करने लगा जिससे पाठकका जी ही अूब जाय, और सौ बातकी अेक बात यह कि वह शुरूसे अन्ततक सुननेवालेकी अुत्सुकता जागृत रखनेमें नाकामयाब तो नहीं रहा। कहानीपन, अिस साहित्यकी प्रथम शर्त है।

सभी कहानी नहीं कह सकते, कुछ लोगोंको यह गुण विधाताकी ओरसे मिला होता है। असलमें वे ही लोग अच्छे अुपन्यास-लेखक हो सकते हैं जो कहानीपनके जानकार हैं। और शुरूसे अन्ततक श्रोताकी अुत्सुकता बनाअे रखनेकी कलाके अुस्ताद हैं।

§ ६३. कोअी भी कहानी हो—यहाँ 'कहानी' नामक साहित्यिक रचनासे मतलब नहीं है, बल्कि लोक-प्रचलित मामूली अर्थमें व्यवहार हो रहा है,—अुसमें छः बातें ज़रूरी हैं:—

(१) वह कुछ प्राणियोंके जीवनकी घटना होती है; (२) अिन लोगोंका सम्बंध कुछ घटनाओं या व्यापारोंसे रहता है; (३) जिनके जीवनकी कथा सुनाअी जा रही है वे आपसमें, और कभी खुद अपनेसे भी, बातचीत ज़रूर करते हैं; (४) कथाकी घटना किसी-न-किसी स्थान और किसी-न-किसी कालमें ज़रूर घटती है; (५) फिर कहनेवालेका अपना कोअी-न-कोअी ढंग ज़रूर रहता है। कोअी भी कहानी हो ये पांच बातें अुसमें रहती हैं, यह तय है।

अेक छठी बात भी है जो आजकल अुपन्यासमें प्रधान हो अुठी है। पुराने ज़मानेमें सब समय अिसका रहना ज़रूरी नहीं समझा जाता था। यह (६) छठी बात है अुद्देश्य। अुपन्यासमें ये छः बातें रहती हैं। शास्त्रीय भाषामें अिन्हें क्रमशः—(१) पात्र (२) कथा-वस्तु (३) कथोपकथन (४) देशकाल (५) शैली और (६) अुद्देश्य कहते हैं।

अुपन्यासके अिन छः तत्त्वोंमेंसे कभी-कभी अेक या दो तत्त्व प्रधान हो जाते हैं। अुनकी प्रधानताके अनुसार अुपन्यासोंके भिन्न-भिन्न भेद हो जाते हैं। अुदाहरणके लिये, जिन अुपन्यासोंमें पात्रोंकी प्रधानता होती है वे चरित्र

प्रधान और जिनमें घटनाकी प्रधानता होती है अुन्हें घटना-प्रधान अुपन्यास कहते हैं। अन्यान्य बातोंकी प्रधानता भी अुनके नामपर ही प्रसिद्ध होती है। यदि हम अिन तत्त्वोंपर ध्यान देकर विचार करें तो मालूम होगा कि घटना अिन सबमें स्थूल वस्तु है और अुद्देश्य सबसे सूक्ष्म। अिन बातोंका अलग-अलग सुंदर निर्वाह अुपन्यासकारका आवश्यक गुण है परन्तु अिन सबके सामंजस्यसे ही अुपन्यासकी कथा मनोहर होती है। अिनके अुचित सन्नि-वेशसे ही अुपन्यासका रसास्वाद सुकर होता है।

§६४. कथा-वस्तुका ठोस और सुसंबद्ध होना परम आवश्यक है। कथाकी जातिको अग्रसर करनेके लिये और अुसके पात्रोंकी मनोवृत्तिको स्पष्ट करनेके लिये जितना आवश्यक है अुससे कुछ भी अधिक होनेसे घटनागत औचित्य नष्ट हो जाता है। अुद्देश्य-विशेषकी सिद्धिके लिये लेखक कभी-कभी अैसी घटनाओंकी योजना करता है जो कथा-वस्तुके ठोसपनकी दृष्टिसे अेकदम अनावश्यक और अप्रासंगिक होती हैं। 'प्रेमाश्रम' में सनातनधर्म-सभाका भड़कीला अधिवेशन कोअी बहुत आवश्यक नहीं था, वह तो सिर्फ ज़मींदारी प्रथाकी कलंक-रेखाको और भी गाढ़ बना देनेके अुद्देश्यसे लिखा गया था। अुसके निकाल देनेसे मूलकथाका कोअी विशेष नुक़सान नहीं होता। परन्तु लेखकको ज़मींदारी-प्रथा और वकालतके पेशेको बुरा सिद्ध करनेका मोह था और वे अिन लंबे प्रसंगोंको छोड़ नहीं सके।

मूलकथाको अुज्वल रूपमें प्रत्यक्ष करानेके लिये कभी-कभी ग्रंथकार अवान्तर घटनाओंकी सृष्टि करता है। वे अवान्तर घटनाअें दो प्रकारसे मूलकथाको अुज्वल और गतिशील बनाती हैं—(१) सहायकके रूपमें या (२) विरोधीके रूपमें। सुग्रीव और बालिका झगड़ा रामायणकी मूलकथाको अग्रसर करनेमें सहायक है, परन्तु 'गोदान' में होरीकी कहानीके साथ

रायसाहब आदि अुच्चतर वर्गके लोगोंका जो समानान्तर घटना-प्रवाह चलाया गया है, वह अिसलिये कि किसानके जीवनको अुसके अेकदम प्रतिकूल जीवनकी पृष्ठभूमिमें रखकर और भी अुज्वल रूपमें दिखाया जा सके।

घटनागत औचित्यका तक़ाज़ा है कि अवान्तर घटनाअें अिस प्रकार मूल घटनाके साथ बुन दी जायँ कि पाठकको कहीं भी संदेह न होने पावे कि वह दूसरी कथा भी पढ़ रहा है। 'रंगभूमि' अेक तरफ सूरदास आदि ग्रामीण पात्रोंकी कहानी है और दूसरी तरफ राजे और रअीसोंकी। परन्तु लेखकने बड़ी मुस्तैदीसे दोनों कथा-वस्तुओंको अेक-दूसरेसे अुलझा दिया है। 'गोदान' की कथावस्तुओंमें अितनी सफाअी नहीं है। अिस प्रकार यद्यपि अुद्देश्यकी सिद्धिके लिये लेखकको बहुत कुछ करनेका साधन और अधिकार प्राप्त है, परन्तु घटनागत औचित्यका निर्वाह भी कम जवाबदेहीका काम नहीं है।

§६५. औचित्य अुपन्यासकी जान है। औचित्यका अभाव सर्वत्र खटकता है, पर अुपन्यासमें अुसका अभाव तो बहुत अधिक खटकनेवाला होता है। पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें, अुनकी बातचीतमें, अुनके वस्त्रालंकारोंके वर्णनमें, अुनकी रीतिनीतिके अुपस्थापनमें सर्वत्र औचित्यकी आवश्यकता होती है। सर्वत्र यह आवश्यक है कि अुपन्यासकार पूरी अीमानदारी और सचाअीसे काम ले। अिन सब बातोंमें देश, काल और पात्रके ज्ञानकी आवश्यकता रहती है। अैतिहासिक अुपन्यास लिखनेवाला लेखक अुस कालके वातावरणसे बँधा होता है। वह कोअी भी अैसी बात अगर लिख दे, जो अुस ज़मानेमें संभव नहीं थी तो बात खटक जायगी और सहृदय पाठकके रसास्वादमें बाधा अुपस्थित होगी।

अेक प्रसिद्ध अुपन्यासकारने पठानकालकी अेक घटनाको आश्रय

करके अुपन्यास लिखा है। अुसमें अमरूदके पेड़ोंका वर्णन है। यह बात काल-विरुद्ध है; क्योंकि अमरूदका पेड़ पोर्तुगीज़ोंका ले आया हुआ है। अुनसे पहले वह भिस देशमें था ही नहीं। अुपन्यासका अेक पात्र खाटपर लेटे-लेटे पुस्तक पढ़ता है, यह भी काल-विरुद्ध बात है। अुन दिनों न तो छापेके कलके कारण आधुनिक ढंगके अुपन्यास ही थे, न पुट्ठोंवाली पुस्तकें ही थीं, और न लेटे-लेटे पढ़नेकी प्रथा ही थी। अुन दिनों खुले पत्रोंकी पुस्तकोंका ही प्रचलन अधिक था। अिसी प्रकार देश-विरुद्ध बातें भी खटकनेवाली होती हैं।

अेक लेखकने अुत्तर-भारतके नगरोद्यानके वर्णन-प्रसंगमें वसंत ऋतुमें शेफालिका पुष्पोंका वर्णन किया है। दक्षिण-भारतमें तो, सुना है, वसंतमें शेफालिका खिलती है, पर अुत्तर-भारतमें यह बात साधारणतः नहीं दिखती। पात्रगत औचित्यके निर्वाहमें प्रायः प्रमादका परिचय पाया जाता है। कभी-कभी बड़े-बड़े सम्राटोंके मुँहसे अैसी बातें कहलवाअी जाती हैं जो न अुनके पदमर्यादाके अुपयुक्त होती हैं, और न चरित्र-विकासके। अिस औचित्य-निर्वाहके लिये परम आवश्यक है कि अुपन्यास-लेखक अपने देश और कालका पूरा जानकार हो, और पात्रोंके चरित्र-विकासका समझनेवाला हो। वह जो कुछ कहे, अुसका देखा-जाँचा और अनुभव किया हुआ हो। अैतिहासिक अुपन्यास लेखककी ओमानदारीकी भी यही कसौटी है।

कहा जा सकता है कि अैतिहासिक अुपन्यास-लेखक प्राचीन कालकी बातोंको स्वयं कैसे देख सकता है? अुत्तर यह है कि अैतिहासिक लेखकका वक्तव्य अितिहासकी अुत्तम जानकारी तथा अुस युगकी प्रामाणिक पुस्तकों, मुद्राओं और शिलालेखोंके आधारपर जाँची हुअी होनी चाहिये। अैतिहासिक अुपन्यासका लेखक मृत घटनाओं और अर्द्धज्ञात या नाममात्रसे परिचित व्यक्तियोंके कंकालमें प्राण-संचार करता है। कल्पना अुसका प्रधान

भव्य है। पर अुस कल्पनाके साथ अुसकी जानकारीका सामंजस्य होना चाहिये। अगर अुसके कल्पनाके पोषक प्रमाण प्रमाणिक नहीं हुअे तो रसास्वादमें पद-पदपर बाधा पहुँचेगी। अिस प्रकार विषयगत औचित्य और विषयिगत अीमानदारी अुपन्यासकी जान है। ये ही लेखकपर पाठकका विश्वास स्थिर करते हैं। जो अुपन्यास-लेखक पाठकका विश्वास नहीं अर्जन कर सकता, वह कभी सफल नहीं हो सकता।

लेखककी अीमानदारीका अेक अुत्तम अुदाहरण सुभद्राकुमारी चौहानकी कहानियोंके स्त्री-पात्र हैं। अिनकी कहानियाँ बहुओं—विशेषकर शिक्षित बहुओं—के दुःखपूर्ण जीवनको लेकर लिखी गअी हैं। अुन्होंने किताबी ज्ञानके आधारपर या सुनी-सुनाअी बातोंको आश्रय करके कहानियाँ नहीं लिखीं, बल्कि अपने अनुभवोंको ही कहानीके रूपमें रूपान्तरित कर दिया है। यही कारण है कि अुनके स्त्री-पात्रोंका चरित्र-चित्रण अत्यन्त मार्मिक और स्वाभाविक हुआ है। अुनसे परिचय पाकर हम सजीव प्राणियोंके संसर्गमें आते हैं, जो अपने जीवनके अुन पहलुओंसे हमारा परिचय कराते हैं, जिन्हें हम बहुत कम जानते हैं। अिस अीमानदारीके कारण ही अुनके पात्र अितने प्रभावशाली हो सके हैं।

§६६. अुपन्यासकारके पात्रोंकी सजीवता और स्वाभाविकता सदा अपेक्षित है। पाठकोंको अुनके संसर्गमें आते समय यह विश्वास बना रहना चाहिये कि वे सत्य हैं, कपोल-कल्पित नहीं। प्रेमचंदको "कल्पनाके गढ़े हुअे आदमियोंमें" विश्वास नहीं था। अुन्होंने लिखा है कि अिन गढ़े हुये कल्पित पात्रोंके कार्यों और विचारोंसे हम प्रभावित नहीं होते। हमें अिसका निश्चय हो जाना चाहिये कि लेखकने जो सृष्टि की है वह प्रत्यक्ष अनुभवोंके आधार-पर की गअी है, या अपने पात्रोंकी ज़बानसे वह खुद बोल रहा है। अिसी-

िलिये कुछ समालोचकोंने साहित्यको लेखकका जीवन-चरित्र कहा है। आज-कलका लेखक कहानी लिखता है पर वास्तविकताका ध्यान रखते हुये; मूर्ति बनाता है पर अैसी जिसमें सजीवता हो; वह मानव-प्रकृतिका सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करता है, मनोविज्ञानका अध्ययन करता है और अिस बातका प्रयत्न करता है कि अुसके पात्र हर हालतमें और हर मौक़ेपर अिस प्रकार आचरण करें जैसे रक्त-मांसका मनुष्य करता है।

पात्रोंका चारित्रिक विकास स्वाभाविक होना चाहिये। साधारणतः दो तरहसे अुपन्यास-लेखक अपने पात्रोंके चरित्रका विकास करता है—(१) घटनाओंसे टक्कर खिलाकर और (२) पात्रके भीतरके स्वाभाविक अंकुरके विशेष गुणको निमित्त बनाकर [दे० §८७]। प्रथमको बाह्य अुपकरणमूलक विकास कहते हैं और दूसरेको आन्तरिक अुपकरणमूलक। दूसरे प्रकारका विकास ही स्वाभाविक और हृदयग्राही होता है। घटिया श्रेणीके लेखक प्रायः अिस विषयमें असफल सिद्ध होते हैं। अुपन्यासका नायक ही जब समस्त घटनाओंमें योग स्थापित कर रहा हो और अुन घटनाओंका आपसमें कोअी संबंध न हो तो अैसे कथानकको शिथिल कथानक कहते हैं; परन्तु यदि घटनाअें जीवन्तरूपमें अेक दूसरेसे गुँथी हों तो अुस कथानकको संग्रथित कहते हैं।

§६७. कुछ अुपन्यासकार आत्मकथाकी शैलीपर अुपन्यास लिखते हैं, कुछ डायरीके रूपमें, कुछ चिट्ठियोंके रूपमें, कुछ बातचीतके रूपमें और कुछ पूर्वापर रूपमें कहानीको कह जानेके रूपमें। सर्वत्र औचित्यका ध्यान रखना आवश्यक है। आत्मकथा या डायरीके रूपमें लिखनेवालेपर केवल नायककी जानी हुअी बातोंके सहारे अुपन्यासगत औत्सुक्य बनाये रखने तथा रस-परिपाक करानेकी जिम्मेदारी होती है। अैसे कथा-प्रवाहके बहावके

लिये बड़ी सावधानीसे अैसी नअी-नअी घटनाओंका अुल्लेख करना पड़ता है, जो पाठककी जानकारीमें संभव हों। चिट्ठियों और बातचीतके रूपमें लिखे गये अुपन्यासोंमें लेखकको कुछ अधिक सुविधा प्राप्त होती है, पर बंधन वहाँ भी होता है। सबसे सहज शैली है अुपन्यासकारका सर्वज्ञ बन जाना। दुनियाके बड़े-बड़े अुपन्यासकारोंने अधिकतर अिसी शैलीको अपनाया है। अुपन्यासकार वहाँ सब जानता है—पात्रके भीतर क्या घट रहा है, अुसके संपर्कमें आनेवाले क्या और कितना समझ रहे हैं, बाहर क्या घट रहा है अित्यादि सभी बातें अुसे मालूम होती हैं। परन्तु सर्वज्ञताकी जवाबदेहीके कारण अुसका कार्य बड़ा कठिन होता है। जो शैली सबसे सहज है, अुसमें औचित्यका निर्वाह सबसे कठिन है।

§६८. अपने अुद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये लेखक सारी घटनाओंका सन्निवेश करता है, पात्रोंके चरित्रोंको अभीष्ट दिशामें विकसित होने देता है, अुनमें बातचीत कराता है और शैली-विशेषका आश्रय लेता है। कभी-कभी वह जिस अुद्देश्यको लेकर लिखने बैठता है, अन्ततक सिद्ध नहीं होता। 'प्रेमाश्रम' में लेखकका अुद्देश्य प्रेम और भ्रातृभावके महान् आदर्शका अंकित करना जान पड़ता है। ग्रंथकारने अिसी अुद्देश्यसे कहानीका भित्ति-स्थापन किया था और चरित्रोंकी योजना की थी, पर अन्ततक जाकर यह अुद्देश्य दब गया है और अेक दूसरा प्रतिपाद्य प्रबल हो गया है। यह दूसरा अुद्देश्य है ज़मीन्दारी-प्रथाकी अनिष्ट-कारिता। लेखक का भावात्मक आदर्श गौण हो गया है और अभावात्मक आदर्श प्रधान।

§६९. अुपन्यासके भिन्न-भिन्न तत्त्वोंका अलग-अलग और मिलाकर भी किया हुआ सूक्ष्म चित्रण और सफलतापूर्वक निर्वाह ही अुपन्यासको बड़ा नहीं बना देता, बड़ा बनाती है अुद्देश्यकी महत्ता और अुसकी सफल

सिद्धि। सब तत्त्व मिलकर पाठकके अूपर जिस प्रभावकी सृष्टि करते हैं अुस प्रभावके मापपर ही अुपन्यासका महत्त्व निर्भर है। घटना, पात्र, कथोपकथन और शैली आदिका सफल निर्वाह अुस प्रभावकी अपेक्षामें ही अुत्तम हो सकता है। कअी अुपन्यास-लेखकोंकी कृतियोंमें अिन तत्त्वोंका जोरदार सन्निवेश है, फिर भी अुनसे पाठकके चित्तपर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। वे मानव-जीवनकी सड़ान और गंदगीको मोहक बनाकर रखते हैं और अिस प्रकार पाठकको अेक प्रकारकी गंदी शराब मिलाकर मोहग्रस्त कर देते हैं। यह वस्तु कभी बड़ी नहीं हो सकती। भोजनकी अुत्तमताकी कसौटी केवल परिपाक, सुगंधि और द्रव्योंका सन्निवेश मात्र नहीं है, और न खूब सुस्वादु होना ही अुसकी कसौटी है। भोजन अच्छा वह है, जो अिन सारे गुणोंके साथ मनुष्यको स्वस्थ और सबल बनावे। जो भोजन परिणाममें मोहग्रस्त कर देता है या रोगी बना देता है, या मृत्युका शिकार बना देता है, अुसे अच्छा भोजन नहीं कह सकते। बुरे प्रभाववाला अुपन्यास भी अैसा ही है। मानव-जीवनकी गंदागियोंको मोहक और आकर्षक करके चित्रण करनेवाले अुपन्यास विषाक्त भोजनके समान घातक हैं। सुप्रसिद्ध पत्रकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदीने अैसे अुपन्यासोंको 'घासलेटी साहित्य' नाम दे रखा है।

§७०. प्रश्न हो सकता है, अुद्देश्यकी महत्ताकी परख क्या है? मनुष्यका चरित्र जिस रूपमें आज परिणत हुआ है अुसके कअी कारण हैं। नाना मनीषियोंने अिसे नाना रूपमें समझने-समझानेकी चेष्टा की है। अपने विशेष दृष्टिकोणका समर्थन तबतक नहीं किया जा सकता जबतक पूर्ववर्ती दृष्टिकोणसे अुसकी श्रेष्ठता न प्रमाणित कर ली जाय। अिस प्रकार पूर्वमतको निरास करके नये मतके स्थापित करनेका नियम है। अुपन्यास-लेखक दार्शनिक पंडितके अिस नियमको नहीं मानता; पर जीवनके प्रति अुसका जो विशेष दृष्टिकोण है अुसे वह कौशलपूर्ण ढंगसे स्थापित करते समय अुस

विधान-श्रृंखलाके वास्तविक मूल हैं। 'कफ़न'में अिस दृष्टिकोणकी ही प्रधानता है। धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोणके प्रति अुसमें कौशलपूर्ण प्रतिवादके भाव हैं। आर्थिक दृष्टिकोणकी प्रधानता अिस कहानीमें कुछ अिस प्रकार अुपस्थित की गअी है कि मध्यमवर्गकी बहु-विघोषित करुणा और प्रेमकी कोमल भावनाओंका कोमलपन अत्यंत खोखला होकर प्रकट हुआ है।

अुत्तम लेखक समाजकी जटिलताओंकी तहमें जाकर अुसे समझता है और वहींसे अपनी विशेष दृष्टि पाता है। यदि कोअी लेखक केवल परंपरागत रूढ़ियोंको—सत् और असत्‌की निर्धारित सीमाओंको—बिना विचारे ही अुपन्यास या कहानी लिखने बैठता है तो वह बड़ी कृति नहीं दे सकता। अुसे हमेशा जटिलताओंको चीरकर भीतर देखनेका व्रत लेना पड़ता है। अैसा करनेके बाद यदि वह रूढ़ियोंको ही सत्य समझे तो कोअी हर्ज नहीं, परन्तु सचाअी अुसकी अपनी आँखों देखी होनी चाहिये। अिसके बिना वह बड़ी कृति नहीं पैदा कर सकता। साधारण पाठक भी अिस कसौटीपर अुपन्यास-लेखकके अुद्देश्य और जीवन-विषयक अुसकी विशेष दृष्टिभंगीकी महत्ता समझ सकता है।

§७१. अपने अुद्देश्यकी सिद्धिके लिये सभी लेखक अपनी तरफ़से काट-छाँट और कमी-वेशी करके मानव-चरित्रको हमारे सामने रखते हैं। बात यह है कि कोअी कितना भी ब्यौरेवार जीवनको अुपस्थापित करनेका यत्न क्यों न करे, अुसे बहुत-सी बातें छोड़नी ही पड़ेगी। किसी आदमीके जीवनमें अेक दिनमें जितने प्रयत्न और चेष्टाअें होती हैं अुनको लिपि-बद्ध करनेसे पोथा तैयार हो सकता है अिसलिये लेखक अपने विशेष अुद्देश्यकी सिद्धिके लिये और कथाको प्रवाहशील तथा मनोरंजक बनाअे रखनेके लिये जितना भी आवश्यक है, अुतना ही अंश लिपि-बद्ध करता है, बाकी जो

तुच्छ हैं, जो अनायास-ग्राह्य हैं, जो अुबा देनेवाली हैं, और जो अनावश्यक हैं, अुन्हें छोड़ देता है। प्रश्न किया गया है कि क्या अैसा करनेका अुसे अधिकार है?

अेक श्रेणीके साहित्यिक हैं जो चरित्रोंमें काट-छाँट और सजाव-बनावको दोष समझते हैं। ये लोग यथार्थवादी कहलाते हैं। ये लोग मानव-चरित्रको अुसके नग्नरूपमें—अर्थात् अुसे बनाअे-सजाअे बिना—जैसा है वैसा ही रूप रख देनेके पक्षपाती हैं। अुनके चरित्रोंका प्रभाव पाठकपर बुरा पड़ेगा या भला अिसकी वे परवा नहीं करते। अुनके चरित्र अपने जीवनकी कमज़ोरियाँ और मज़बूतियाँ, दोष और गुण, अमृत और विष दिखाते हुये अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं। संसारमें स्पष्ट ही दिखता है कि सब समय सत्कर्मोंका फल शुभ ही नहीं होता और असत् कर्मोंका फल अशुभ ही नहीं होता, अिसलिये अिन यथार्थवादी साहित्यकोंके चरित्र अच्छा काम करके भी ठोकरें खाते रहते हैं, और अपमानित-लांछित होते रहते हैं। अपने अनुभवोंके बलपर यथार्थवादीने देखा है कि संसारमें बुरे चरित्रोंकी ही अधिकता है और अच्छे-से-अच्छे समझे जानेवाले चरित्रमें भी दाग होता ही है। अिसीलिये यथार्थवाद मनुष्यके चरित्रको अुसके नग्नरूपमें अुपस्थित करता है। प्रेमचंदने यथार्थवादीके अिन गुणोंको ध्यानमें रखकर यह निष्कर्ष निकाला था कि यथार्थवाद हमें निराशावादी बना देता है। वह हमारी विषमताओं और ख़ामियोंका नंगा प्रदर्शन है। वह मानव-चरित्रपरसे हमारा विश्वास अुठा देता है और पाठकको अैसा बना देता है कि अुसके चारों ओर बुराअी-ही-बुराअी दिखाअी देने लगती है। परन्तु अुन्हें भी अिसमें संदेह नहीं कि समाजकी कुप्रथाको दिखानेके लिये यथार्थवाद अत्यन्त अुपयुक्त है; क्योंकि अिसके बिना बहुत संभव है कि हम अुस बुराअीको दिखानेके लिये

अत्युक्तिसे काम लें और चित्रको अुससे कहीं काला दिखाअें, जितना कि वह वास्तवमें है। लेकिन जब वह दुर्बलताओंके चित्रणमें शिष्टताकी सीमा लाँघ जाता है, तब आपत्तिजनक हो जाता है।

दूसरा दल आदर्शवादी कहलाता है। वह अैसे चरित्रोंकी सृष्टि करना पसंद करता है जो दुनियाकी कमज़ोरियोंसे अूपर होते हैं, जो प्रलोभनोंसे डिगते नहीं और जिनकी सरलता दुनियादारी और कूट-बुद्धिसे हारकर भी पाठकको अुन्नत बनाती है। आदर्श-वादी यह नहीं मानता कि मनुष्यमें छोटा अहंभाव है, जो अुसे आहार-निद्रा आदि पशु-सामान्य प्रवृत्तियोंकी गुलामी करनेको ही प्ररोचित करता है, या जो सारी दुनियाको वंचित करके अपनेको समृद्ध बनानेमें रस पाता है वही वास्तव या यथार्थ है। अुसके मतसे मनुष्यका सच्चा मनुष्यत्व अुसका आत्म-त्याग है,सत्यनिष्ठा है, कर्तव्यपरायणता है, और अिसीको वह बड़ा करके चित्रित करता है। वह कठिन-से-कठिन कष्टकी हालतमें भी अपने आदर्श पात्रके चेहरेपर शिकन नहीं पड़ने देता।

§७२. यथार्थवादके साथ रोमांसकी भी तुलना की जाती है। 'रोमांस' शब्द अंग्रेजीका है। साहित्यमें अिसका प्रयोग दीर्घकालसे होता रहा है, अिसलिये अिस शब्दसे जो कुछ समझा जाता है अुसमें बहुत परि-वर्तन भी होता रहा है। साधारणतः रोमांस अुन साहस और प्रेम-मूलक कथाओंको कहा जाता है जो भारतीय साहित्यके गद्यकाव्यकी श्रेणीमें आते हैं (दे० §७९.) यही कारण है कि अंग्रेज पंडितोंने 'कादम्बरी', 'दशकुमार-चरित' आदिको भारतीय रोमांस कहा है। रोमांसमें कल्पनाका प्राबल्य होता है और अुसमें अेक अैसे वातावरणका निर्माण किया जाता है, जो अिस वास्तविक दुनियाकी जटिलताओंसे तो मुक्त रहता है पर जहाँ मनुष्यके मनोराग वैसे ही होते हैं जो अिस दुनियाके होते हैं।

वस्तुतः रोमांसका वातावरण काव्यमय होता है और अुसमें कल्पना और भावावेगका प्राधान्य होता है। यथार्थवादके यह ठीक विरुद्ध दिशामें जाता है। आदर्शवादके साथ यथार्थवादका अन्तर अुद्देश्यगत है, परन्तु रोमांसके साथ अुसका विरोध प्रकृति-गत है। किसी पश्चिमी पंडितने रोमांसके मूलमें जो सत्य है अुसकी तुलना काव्यगत सत्यसे की है। यथार्थवाद तथ्यजगत्के बाहरकी चिन्ता नहीं करता। रोमांस मनुष्यके चित्तकी अुस वास्तविक मनोवाञ्छासे अुत्पन्न है जो चिरन्तन है और सत्य है। काव्यका सत्य ही रोमांसका भी सत्य है, क्योंकि रोमांस वस्तुतः गद्यकाव्य है।

§७३. अुपन्यासकार परिस्थितियोंके सच्चे चित्रणसे विमुख नहीं हो सकता, परन्तु अुसका अुद्देश्य केवल फोटोग्राफी नहीं है, वह कलाकार है। यथार्थवाद चित्रका सिर्फ अेक पहलू है। केवल सच्चा जीवन-चित्रण भी अपना नैतिक संदेश रखता ही है। परन्तु सच्चा चित्रण होना चाहिये। बहुत-से लेखक यथार्थवादके नामपर समाजकी अुन गंदागियोंका ही चित्रण करते हैं जो समग्र रूपका अेक नगण्य अंश मात्र हैं। यह यथार्थवाद नहीं हो सकता। यथार्थवाद भलेकी अुपेक्षा करके बुरेके चित्रणको नहीं कहा जा सकता, फिर वह चित्रण कितना भी यथार्थ क्यों न हो। अिसी प्रकार अुस चीज़को आदर्शवाद नहीं कह सकते जो केवल रूढ़ि-समर्पित सदाचारके अुपदेशका नामान्तर है। अुपन्यासकारका व्यक्तिगत अुद्देश्य और मतवाद ठोस तथ्योंपर आधारित होता है। अुसका प्रचारित नैतिक संदेश अिन तथ्योंसे विच्छिन्न होकर कलाके अूँचे सिंहासनसे च्युत हो जाता है। जिस प्रकार समग्ररूपसे विच्छिन्न बुराअियाँ अपना मूल्य खो देती हैं, अुसी प्रकार समग्रसे विच्छिन्न भले-भले अुपदेश भी फीके हो जाते हैं। अुपन्यासका अुपदेश भी काव्यके अर्थकी भाँति व्यंग्य होना चाहिये। वाच्य होनेसे अुसका मूल्य कम हो

जाता है। अिसलिये प्रेमचंदजीने कहा है कि अच्छा अुपन्यास वह है जहाँ यथार्थवाद और आदर्शवादका अुचित समन्वय हो।

§७४. केवल यथार्थ चित्रण अुपन्यास या कहानीको महान् नहीं बनाता। हिन्दीकी अेक प्रसिद्ध कवियित्रीकी कहानियाँ हमने पढ़ी हैं। अुस कहानियोंके स्त्री-पात्र बड़े ही सच्चे और सजीव थे। अिन पात्रोंसे परिचय पानेके बाद मनुष्य बहुत-कुछ सोचने-समझनेका अवसर पाता है। परन्तु फिर भी अुनकी कहानियोंमें समाजके प्रति सिर्फ अेक नकारात्मक घृणाका भाव ही स्पष्ट हुआ है। पाठक यह तो सोचता है कि समाज किस प्रकार स्त्रियोंपर—विशेषकर शिक्षित बहुओंपर—निर्दयताका व्यवहार कर रहा है, परन्तु अुनके चरित्रोंमें कहीं भी वह भीतरी शक्ति या विद्रोह-भावना नहीं पाअी जाती, जो समाजकी अिस निर्दयतापूर्ण व्यवस्थाको अस्वीकार कर सके। कहीं भी वह मानसिक दृढ़ता नहीं पाअी जाती, जो प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी दुख पानेवालेको विजयी बना सके, जो स्वेच्छापूर्वक समाजकी बलिवेदीपर बलिदान होनेका प्रतिवाद कर सके। अिसके विरुद्ध अुनके चरित्र अत्यन्त निरुपाय-से होकर समाजकी अग्नि-शिखामें अपने-आपको होम देते हैं, और चुपकेसे दुनियाकी आँखोंसे ओझल हो जाते हैं।

सवाल यह नहीं है कि सचमुच ही अैसा होता है या नहीं। सचमुच ही होता होगा। किन्तु सचमुचका बहुत-कुछ होना ही बड़ी बात नहीं है। अेक जहाज तूफानमें अुलझला है। भयंकर संघर्षके बाद डूब जाता है। हजारों आदमी 'हाय-हाय' करते हुअे समुद्रके गर्भमें बैठ जाते हैं। अिन मरनेवालोंमें जहाजका वह वीर कप्तान भी है जो अंतिम क्षणतक अदम्य आशा और अुत्साह लेकर अपनी सारी विद्या और बुद्धिके बलपर तूफानसे जूझता रहा और निरुपाय यात्रियोंको बचा लेनेके लिये जान लड़ाता रहा।

मरना कप्तानका भी सही है, और 'हाय-तोबा' मचानेवाले हजारों भीरु यात्रियोंका भी सही है। दोनों सचमुच ही हुअे हैं और दोनों ही यथार्थ हैं। परन्तु अेक यथार्थ मनुष्यमें आशा और विश्वास पैदा करता है और दूसरा यथार्थ निराशा और भीरुता। कोअी भी लेखक जब दुनियाके लाख-लाख मनुष्योंमेंसे किसी अेकको चुनकर अपने ग्रंथका नायक बनाता है तो वह चुनता ही है। चुनाव तो अुसे करना ही पड़ेगा। तो फिर क्यों न अैसे यथार्थ चरित्र चुने जायँ जो यथार्थमें मनुष्य हों, मनुष्यका खाल ओढ़े हुअे कीड़े-मकोड़े नहीं ?

मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि दुनियाके दुःख और अवसादसे आँख मूँद ली जाय। आँख मूँदनेवाला बड़ा लेखक नहीं हो सकता। परन्तु लेखकसे यह आशा करना बिल्कुल असंगत नहीं है कि वह दुःख, अवसाद और कष्टोंके भीतरसे अुस मनुष्यकी सृष्टि करे जो पशुओंसे विशेष है, जो परिस्थितिओंसे जूझकर ही अपना रास्ता साफ़ करता आया है, जो सत्य और कर्तव्य-निष्ठाके लिये किसीकी स्तुति या निंदाकी बिल्कुल परवा नहीं करता। अिन्हीं बातोंसे अुपन्यास बड़ा होता है, काव्य महान् होता है, कहानी सफल कही जाती है।

§७५. अैसा करना असंभव नहीं है। शिवरानी देवीकी कहानियोंको अुदाहरणके रूपमें लिया जा सकता है। 'आँसूकी दो बूंदें' नामक कहानी अिस विषयमें पहले बताअी हुअी कहानियोंके विरोधमें रखी जा सकती है। अिस कहानीमें सुरेश नामक युवककी बेवफाअी कनक नामक लड़कीके सर्वनाशका कारण नहीं हो जाती। कनक अपने लिये रास्ता खोज लेती है। वह रास्ता सेवाका है। अगर अुसका प्रेम नकारात्मक होता—अर्थात् अुसमें लोभकी जगह विराग, क्रोधके स्थानपर भय और आश्चर्यकी जगह संदेह,

सामाजिकताके बदले अेकान्त-निष्ठा और संगमेच्छाकी जगह व्रीडाका अुदय होता तो वह भी शायद आत्मघात कर लेती।

मनोविज्ञानके पंडित मनुष्यके दो प्रकारके चरित्रोंकी बात बताते हैं,—नकारात्मक या 'नेगेटिव' और धनात्मक या 'पाजिटिव'। लोभ, क्रोध आश्चर्य, सामाजिकता और संगमेच्छा धनात्मक गुण हैं और अिनके स्थानोंमें क्रमशः विराग, भय, संदेह, अेकान्तनिष्ठा और व्रीडा नकारात्मक। पहले विश्वास किया जाता था कि स्त्रियोंमें नकारात्मक गुण अधिक होते हैं और पुरुषोंमें धनात्मक गुण। आधुनिक कालके प्रयोगोंसे अिस विश्वासको बहुत अधिक ज़ोर देने योग्य नहीं समझा जा सकता। यह माना जाने लगा है कि प्रत्येक मनुष्यमें अिन दोनों प्रकारके गुणोंका मिश्रण होता है। जिसमें धनात्मक गुण अधिक होते हैं अुसीका चरित्र आशा और विश्वासका संचार कराते हैं।

वस्तुतः कोअी भी लेखक अेक व्यक्तिमें केवल अेक ही प्रकारके गुण दिखाकर आजके युगमें पाठकका विश्वास-पात्र नहीं बना रह सकता, क्योंकि मनुष्य-चरित्र दोनोंका मिश्रण है। मनोविज्ञानकी प्रयोगशालामें यह बात सिद्ध हुअी है कि कमज़ोर-चरित्रका आदमी जिस प्रकारके बलिष्ठ-चरित्रके संसर्गमें आता है अुसी प्रकारका हो जाता है। अुपन्यासके जीवन्त और बलिष्ठ पात्र पाठकोंके सहचर हैं। नाना विपत्तियों और कष्टोंके भीतरसे गुजरती हुअी अुनकी कर्तव्य-निष्ठा और सच्चा मनुष्यत्व पाठकको बल देता है, परन्तु अुनकी अिंद्रियपरायणता, कूट-बुद्धि और कुटिल-कर्म पाठकको दुर्बल और निरुत्साह बना देते हैं। परिस्थितियोंसे आँख मूँदना आदर्शवाद नहीं है। वस्तुतः सच्चा आदर्शवादी सच्चा यथार्थवादी होता है, वह मनुष्यका मनुष्यत्व पहचानता है और प्राण-धर्मका रहस्य समझता है।

§७६. शायद यह बात सुननेमें आश्चर्यजनक मालूम दे कि मानवताके सच्चे स्वरूप और प्राणधर्मको पहचाननेवाला लेखक यदि चरित्र-चित्रणमें छोटी-मोटी ग़लतियाँ भी करे तो भी वह बड़ी कृति दे सकता है। हम शुरूसे ही अिस प्रसंगमें 'चित्रण' शब्दका व्यवहार करते आये हैं। यह शब्द चित्र बनानेकी विद्यासे लिया गया है; अुपन्यास या कहानीके प्रसंगमें अिसका प्रयोग लाक्षणिक है। अुपन्यास या कहानीमें हमें जो मानव-जीवन प्राप्त होता है अुसे हम चित्रकी भाँति प्रत्यक्ष देखते हैं। अिसीलिये बार-बार साहित्यमें अिस शब्दका प्रयोग होता है। यदि अूपरकी बातको हम चित्रकी भाषामें कहनेका प्रयत्न करें तो वह कुछ अिस प्रकार होगा—किसी मनुष्यके चित्रमें यदि अुसके हाथ-पैर ठीक-ठीक चित्रित न हों और फिर भी यदि आदमीका प्राणधर्म ठीक-ठीक चित्रित किया जा सका हो, तो चित्र बड़ी कृति बन सकता है! अूपर-अूपरसे यह कथन बड़ा विचित्र मालूम पड़ता है। आदमीके हाथ-पैर दुरुस्त नहीं और फिर भी वह चित्र बड़ा हो सकता है! मनुष्यका अन्यान्य जीवोंसे जो वैशिष्ट्य है वही मनुष्यका प्राणधर्म है—अर्थात् अुसीको आश्रय करके मनुष्य मनुष्य बना हुआ है। यदि वह धर्म ठीक है तो यह कोअी आवश्यक नहीं कि अिसके अंग-प्रत्यंग ठीक ही हों—हों तो बहुत अच्छा, न हों तो कोअी बात नहीं। जायसी कुरूप थे, सूरदास अंधे थे, चौरंगीनाथ लँगड़े थे; फिर भी कौन कहेगा कि ये सिद्ध पुरुष नहीं थे।

अेक चित्रके अुदाहरणसे समझनेपर यह बात ज़्यादा आसान हो जायगी। अिस विषयमें हम भारतवर्षके श्रेष्ठ शिल्पाचार्य श्री नंदलाल बसु महाशयके लेखसे अेक अुद्धरण यहाँ संग्रह कर रहे हैं। बसु महाशयने रवीन्द्रनाथके चित्रोंकी आलोचना करते हुअे अेक बार कहा था कि अुनके चित्र यथार्थ तो होते हैं पर यथार्थवादी नहीं होते। जब बहुत-से पाठकोंने अुनसे अिस बातको स्पष्ट करनेका अनुरोध किया तो अुन्होंने लिखा—

"पश्चिमी देशोंमें चित्रणीय वस्तुओंका अितना सूक्ष्म अध्ययन हुआ कि अेक शिल्पी-संप्रदाय वस्तुको जैसा वह है वैसा ही दिखानेपर अड़ गया। यही यथार्थवादिता (या 'रियलिस्टिक') है। किन्तु अेक सिंह अंकित करनेवाला चित्रकार सिंहके सभी अंगों और चेष्टाओंको अंकित करके भी— अर्थात् सिंहकी बनावटके प्रति पूर्ण अीमानदार रहकर भी—अेक अैसा सिंह बना दे सकता है जिसमें वह शौर्य, पराक्रम और अकुतोभय भाव नहीं आ सकता, जो सिंहत्वकी जान है। अुसका यह अंकित चित्र यथार्थवादी तो होगा, पर यथार्थ नहीं। दूसरी तरफ़ अेक शिल्पी सिंहके अंगोपांगोंके चित्रणमें ग़लती करके भी यदि अैसी सिंह-मूर्ति बना देता है, जिसे देखकर दर्शकके मनमें सिंहत्वका भाव जग अुठे, तो वह यथार्थवादी न हो करके भी यथार्थ सिंह अंकित कर सका है। रवीन्द्रनाथ अिसी श्रेणीके शिल्पी थे।

§७७. "औसत शिक्षित व्यक्तिको अूपरकी बात ज़रा अजीब लगेगी। सिंहकी बनावट ठीक होनेपर भी क्यों सिंह ग़लत हो गया और बनावटमें ग़लती होनेपर भी क्यों ठीक हो गया, यह बात अूपर-अूपरसे पहेली-जैसी लगती है। अिस बातको यों समझा जायः—
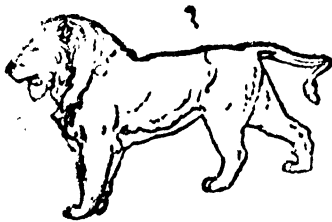
"अूपरके चित्रोंमें नं० १ अेक आधुनिक कलाकारका बनाया हुआ सिंह है। अिसमें सभी अंग ठीक-ठीक चित्रित हुअे हैं। अिसलिये अिसे 'रियलिस्टिक' कहा जा सकता है। चित्र नं० २ अेक बहुत पुराने असीरियन कलाकारका अंकित सिंह है। अिसका अंग-विन्यास अुतना यथार्थ नहीं है जितना प्रथम चित्रका है। फिर भी अिसमें सिंहत्व पूर्ण-मात्रामें विद्यमान है। अिस चित्रको देखनेवालेके मनमें सिंह-संबंधी सभी गुण जाग्रत हो जाते हैं। अिसीलिये यह 'रियलिस्टिक' न होकर भी 'रियल' है। अैसा यह अिसलिये हुआ है कि सिंहत्वका जो छन्द है वह अिसमें वर्तमान है। यह 'छन्द' नं० ३ के चित्रमें दिखाया गया है। अनेक परिश्रम और अनुधावनके बाद कलाकारोंने अिस 'छन्द' का आविष्कार किया है। यही वह अरूप (abstract) धर्म है जो वस्तुके बिना भी सत्य है। रवीन्द्रनाथके चित्रोंमें यह धर्म वर्तमान है। वह कभी वस्तुके साथ है और कभी वस्तुसे अलग। अिसी 'छन्द' की यथार्थताके कारण अनेक चित्र 'रियलिस्टिक' न होकर भी 'रियल' हैं।" [हिन्दी 'विश्वभारती पत्रिका', खंड १, अंक १]

§७८. कुछ लोग अुपन्यासोंको तीन श्रेणीका मानते हैं—घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान और भाव-प्रधान। स्टीवेंसन अिसी मतके अुपस्थापक थे। वे घटना-प्रधान अुपन्यासको ही सबसे अुत्तम समझते थे। अुनके मतसे अुपन्यासकारकी सबसे बड़ी सफलता यह है कि वह अेक अैसी मायाकी सृष्टि कर दे और रोचक परिस्थितियोंको अैसे मोहक ढंगसे अुपस्थित कर दे कि पाठकोंकी कल्पना अुससे आकर्षित हुअे बिना न रह सके—अुपन्यास पढ़ते समय पाठक अपनेको घटनाओंमें तन्मय कर दे और पात्रोंके साथ अेकाकार कर दे, ताकि पात्रोंके साहसपूर्ण कृत्योंको अपना-सा समझकर वह अुनमें रस लेने लगे।

स्टीवेंसनका यह मत सर्वांशमें ग्राह्य नहीं है, यह हम आगे चलकर समझ सकेंगे; पर अिसमें सन्देह नहीं कि घटनाओंका मनोरंजक सन्निवेश अुपन्यासकारका बड़ा भारी गुण है।

(१) हिंदीमें नाना प्रकारके घटना-प्रधान अुपन्यास लिखे गअे हैं। सबसे प्रधान और प्रथम प्रयत्न देवकीनंदन खत्रीके तिलस्मी अुपन्यास हैं, जिनमें अैयारोंके घात-प्रतिघातमूलक घटनाओंका सन्निवेश बड़ी तत्परताके साथ किया गया है। अिन अुपन्यासोंमें अद्‌भुत तिलस्मोंका मिश्रण है, परंतु वे घटना-प्रधान अुपन्यास ही हैं। यद्‌यपि अैयारोंके चरित्रगत गुण भी अिनमें कम आकर्षक नहीं हैं, तथापि घटनाओंकी प्रधानता अिनमें स्पष्ट है। अिसी प्रकार डकैती आदिके साहसिकतापूर्ण कथानक, जासूसी अुपन्यास, प्रेमाख्यान, अैतिहासिक और पौराणिक अुपन्यास केवल घटनाओंके सन्निवेशसे ही मोहक बने हैं। (२) हिंदीमें प्रेमचंद, सुदर्शन और ‘कौशिक’ आदि लेखकोंकी कहानियाँ और अुपन्यास चरित्र-प्रधान श्रेणीमें पड़ेंगे, और (३) ‘प्रसाद’ का ‘तितली’ और ‘कंकाल’, शिवनंदन सहायका ‘सौंदर्योपासक’ तथा ‘हृदयेश’ की कहानियाँ भाव-प्रधान श्रेणीमें पड़ेंगी।

§७९. जिन्हें भाव-प्रधान अुपन्यास कहकर अूपर अुल्लेख किया गया है अुनमें बहुत कुछ पुरानी कथा-आख्यायिकाओंके गुण हैं। अुनमें भाषाकी मनोहारिता, अलंकार-योजना, पद-लालित्य और भावावेग अितनी अधिक मात्रामें हैं कि अुन्हें गद्य-काव्य कहना ज्यादा अुचित होगा। अुपन्यास विशुद्ध गद्य-युगकी अुपज है। अुनमें भाषाकी गद्यात्मकता और सहज भाव अपेक्षित है। अिन अुपन्यासोंमें वह बात नहीं है।

हिंदीके अेक प्रवीण विद्वान्‌ने अुपन्यासको गद्य-काव्यका ही अेक भेद माना है। किन्तु यह बात आंशिक रूपमें ही सत्य है। पुराने ज़मानेके

'वासवदत्ता', 'दशकुमार-चरित', 'कादंबरी' आदि काव्योंसे ये आधुनिक अुपन्यास भिन्न श्रेणीके हैं। अुपन्यास नये यंत्र युगकी अुपज हैं। नये यंत्र-युगने जिन गुण-दोषोंको अुत्पन्न किया है अुन सबको लेकर यह नया साहित्यांग अवतीर्ण हुआ है। छापेके कलने अिनकी माँग बढ़ाअी है और अुसीने अुनकी पूर्तिका साधन बताया है।

यह ग़लत धारणा है कि अुपन्यास और कहानियाँ संस्कृतकी कथा-आख्यायिकाओंकी सीधी संतान हैं। अूपर जिन भाव-प्रधान अुपन्यासोंकी चर्चा हुअी है, अुनकी रचनाके मूलमें संभवतः पुरानी कथा-आख्यायिकाओंका आदर्श था, परंतु शीघ्र ही यह भ्रम टूट गया कि शब्दोंमें झंकार देकर गद्य-काव्य लिखना और आधुनिक ढंगके अुपन्यास लिखना अेक ही बात है। झंकार कविताका बड़ा भारी गुण है, परंतु अुपन्यासमें वह थोड़ी मात्रामें ही काम देता है। चूँकि अुपन्यास और कहानियाँ विशुद्ध गद्य-युगकी अुपज हैं, अिसलिये अुनकी प्रकृतिमें गद्यका सहज, स्वाभाविक प्रवाह है। अिस नवीन साहित्यांगका पुराने गद्य-काव्योंसे जो प्रधान अंतर है, वह आदर्श-गत है। यंत्र-युगने पश्चिममें जिस व्यावसायिक क्रान्तिको जन्म दिया अुसके कअी फलोंमेंसे अेक है वैयक्तिक स्वाधीनता। यह वैयक्तिक स्वाधीनता ही अुपन्यासोंका आदर्श है और काव्यकालका रूढ़ि-निर्धारित और परंपरा-समर्थित सदाचार कथा-आख्यायिकाओंका आदर्श है। अुपन्यासमें दुनिया जैसी है वैसी ही चित्रित करनेका प्रयास होता है। अिस वास्तविकताके भीतरसे ही अुपन्यासकार अपना आदर्श ढूँढ़ निकालता है (दे० §७०-७१)। कथा और आख्यायिकामें कवि कल्पनाके बलपर वास्तविक दुनियासे भिन्न अेक नअी दुनिया बनाता है।

§८०. अुपन्यास और काव्यमें यह मौलिक अन्तर है कि अुपन्यास मौजूदा हालतको भुलाकर भविष्यकी कल्पना नहीं कर सकता, जब कि

काव्य वर्तमान परिस्थितिकी संपूर्ण अुपेक्षा करके अपने आदर्श गढ़ सकता है। यही कारण है कि अुपन्यासकार वर्तमानपर जमा रहता है। प्राचीन अैतिहासिक कथानककी रचनाके समय भी वह वर्तमान कालकी जानकारियोंके बलपर ही अपना कार-बार चलाता है और जासूसी तथा वैज्ञानिक कथावस्तुको सम्हालनेमें भी आधुनिक जानकारियोंकी जहाँतक पहुँच है, अुसीके आधारपर अपनी कल्पनाओं और संभावनाओंकी सृष्टि करता है। वह कविकी भाँति जमानेके आगे रहनेका दावा नहीं करता। काव्य-दुनियाकी छोटी-मोटी तुच्छताओंको भी महिमा-मंडित करके प्रकाशित करता है, जो कुछ है अुसे सजाकर, सँवारकर सुंदर और महत् बनानेकी साधना करता है।

वस्तुतः जहाँ कहीं भी तुच्छताको महिमा-मंडित करके प्रकाशित करनेका प्रयत्न है वहाँ अुपन्यासकार कविका काम करता है। अेक अुदाहरण लिया जाय :—

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अनेक अुपन्यास लिखे हैं जिनमें सर्वत्र काव्यका सुर ही प्रधान हो अुठा है। अुन्होंने जान-बूझकर अेक अुपन्यास अैसा लिखा है जिसमें, आलोचकोंका मत है कि, कवित्वको दबाकर औपन्यासिकत्व प्रधान हो अुठा है। अिस अुपन्यासका नाम है 'मालञ्च'। अिसमें नायिका बीमार पड़ जाती है और नायक किसी और लड़कीके साथ काम-काजमें लग जाता है। नायिकाको अीर्ष्या होती है। ज्यों-ज्यों वह मृत्युके निकट पहुँचती जाती है त्यों-त्यों अुसकी अीर्ष्या बढ़ती जाती है। अपने देवरके समझानेसे वह संकल्प करती है कि मरते समय वह अपनी समस्त स्वार्थ-बुद्धिको जलांजलि देकर अपने हाथों अुस लड़कीको पतिको सौंप जायगी। अैसा मौका आता है। अुस मौकेपर मरती-मरती यदि वह कह

देती कि 'हे प्रिय, मैंने अपना सर्वस्व तुम्हें दिया है, अिस बालिकाके साथ अपना मान-अभिमान सब कुछ तुम्हें निःशेष भावसे देकर विदा लेती हूँ', और प्यारसे अुस लड़कीका हाथ पतिके हाथोंमें रखकर दम तोड़ देती तो यह बात कवित्वका अेक सुन्दर अुदाहरण हो जाती। पर मौक़ा आनेपर वह अैसा नहीं करती। अपनी तुच्छ अीर्ष्याको अन्ततक वह अपने त्यागकी महिमासे महिमा-मंडित नहीं कर पाती। लड़कीको देखकर वह और भी अीर्ष्यासे जल अुठती है और दुर्वाच्य कहती हुअी और मरनेके बाद भी अुसे जलाती रहनेका अभिशाप देती हुअी दम तोड़ देती है। अिस प्रकार कवित्वका वातावरण छिन्न-विच्छिन्न हो गया है और अुपन्यासकारकी वास्तव-प्रियता प्रधान हो अुठी है।

§८१. अुपन्यास और कहानियाँ आजके ज़मानेमें बहुत शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक साहित्यांग समझे जाते हैं। अिनके लेखकका अपना अेक ज़बर्दस्त व्यक्तिगत मत होता है, जिसकी सचाअीके विषयमें लेखकका पूरा विश्वास होता है। वैयक्तिक स्वाधीनताका यह सर्वोत्तम साहित्यिक रूप है। 'घासलेटी' अुपन्यासके लेखकका अपना कोअी मत नहीं, जो अेक ही साथ अुसका अपना भी हो और जिसपर अुसका अखण्ड विश्वास भी हो। अिसीलिये 'घासलेटी' लेखक ललकारे जानेपर या तो भाग खड़ा होता है या विक्षुब्ध होकर गाली-गलौजपर अुतर आता है। वह भीड़के आदमियोंको अपनी नज़रके सामने रखकर लिखता है, पर अपने प्रचारित मतपर अुसे खुद विश्वास नहीं होता।

प्रेमचंदका अपना मत है जिसपर वे पहाड़के समान अविचलित खड़े हैं। अिस अेक महागुणके कारण नाना विरोधोंके होते हुअे भी जैनेंद्रकुमारको साहित्यमें अपना स्थान बना लेनेसे कोअी नहीं रोक सका। अुपन्यासकार अुपन्या-

सकार है ही नहीं, यदि अुसमें अपनी विशेष दृष्टि न हो और अुस विशेष दृष्टि-पर अुसका दृढ़ विश्वास न हो। महत्वपूर्ण अुपन्यास या कहानी केवल अवसर-विनोदनका साधन नहीं है। वे अिसलिये महत्त्वपूर्ण होती हैं कि अुनकी नींव मज़बूतीके साथ अुन वस्तुओंपर रखी हुआी होती है जो निरंतर गंभीर भावसे और निर्विवाद रूपमें हमारी सामान्य मनुष्यताकी कठिनाअियों और द्वंद्वोंको प्रभावित करती हैं। हम अुपन्यासकारके रचना-कौशल, घटना-विकासकी चतुराअी, पात्रोंके सहज-स्वाभाविक विकासकी सचाअी और अपने निजी दृष्टिकोणकी अीमानदारीके कारण मनुष्यमात्रके साथ अेकात्मता अनुभव करते हैं, दूसरोंके दुःख-सुखमें अपनापन पाते हैं, और अिस प्रकार हमारा हृदय संवेदनशील और आत्मा महान् बनता है। हम पहले ही लक्ष्य कर चुके हैं कि यह अेकात्मताकी अनुभूति साहित्यका चरम साध्य है।

---

७. नाटक

§८२. हमने अुपन्यासको समझनेका प्रयत्न किया है। अब नाटकको समझने आ रहे हैं। यह क्रम कालक्रमकी दृष्टिसे अुलटा है। पहले नाटकका आविर्भाव हुआ था और अुसके बहुत बाद जाकर अुपन्यासका हुआ। जिस तरह कालक्रमके हिसाबसे नाटककी विवेचना ही पहले करनी चाहिये थी, अुपन्यासकी बादमें। प्रायः ही आलोचक लोग अिसी क्रमका पालन करते हैं। अिसका कारण यह है कि अुपन्यास असलमें नाटककी अपेक्षा शिथिल कथानकका साहित्य है। नाटक अधिक ठोस कथानकका साहित्य है। अिसलिये अुपन्यासका विश्लेषण सहज और अल्पायास-ग्राह्य होता है। दूसरे, नाटक अुपन्यासकी भाँति केवल पुस्तकगत साहित्य नहीं है। वह रंगमंचको दृष्टिमें रखकर लिखा गया होता है—अर्थात् केवल पुस्तकमें लिखी हुआी बातें ही संपूर्ण नाटक नहीं हैं; वे अपने-आपकी पूर्णताके लिये रंगमंचकी अपेक्षा रखती हैं। अुपन्यासमें यह बात नहीं होती; वह अपना रंगमंच अपने पात्रोंमें लिये फिरता है। तीसरे, अुपन्यास-लेखक जानता है कि अुसका पाठक अपनी सुविधा और अवसरके मुताबिक थोड़ा-थोड़ा करके पढ़ सकता है। अिसलिये वह किसी संकीर्णतामें बँधा नहीं रहता; जब कि नाटकका लिखनेवाला लेखक अच्छी तरह जानता है कि अुसका नाटक दो या तीन घंटेके भीतर द्रष्टाको देख लेना है। और अिसलिये आकार और विस्तारके मामलेमें वह संकीर्ण सीमामें बँधा रहता है। अुसकी यह मनोवृत्ति नाटकको जहाँ अधिक ठोस बना देती है वहाँ अनेक कौशल ग्रहण करनेको बाध्य कर देती है। अिसीलिये नाटक अुपन्यासकी अपेक्षा अधिक जटिल होता है।

अेक चौथा कारण यह है कि अुपन्यासकारको अपने पात्रोंके भीतरी मनोभावोंको खोलकर बता देनेकी स्वाधीनता प्राप्त रहती है, जो नाटककारको नहीं रहती। अिसलिये नाटक-लेखक जहाँ अपने अुपस्थापनमें संक्षिप्त और ठोस होता है वहाँ अनेक बंधनोंसे जकड़ा भी रहता है। अिस पराधीनताके कारण अुसे अनेक कौशल अवलंबन करने पड़ते हैं। अिन भिन्न-भिन्न कारणोंसे भिन्न-भिन्न कौशलोंके अवलंबनके कारण अुपन्यासकी अपेक्षा नाटक अधिक ठोस होता है। अिसलिये यह मामूली क़ायदा-सा हो गया है कि पहले अुपन्यासकी विवेचना कर लेनेके बाद ही नाटककी विवेचना की जाय।

§८३. जिन पंडितोंने पुराने शास्त्रोंका अध्ययन किया है अुनका अनुमान है कि बहुत पहले भारतवर्षमें जो नाटक खेले जाते थे अुनमें बातचीत नहीं हुआ करती थी। वे केवल नाना अभिनयोंके रूपमें अभिनीत होते थे। अब भी संस्कृतके पुराने नाटकोंमें अिस प्रथाका भग्नावशेष प्राप्य है। अिन नाटकोंमें जब कोअी पात्र कुछ करनेको होता है तो अुसका निर्देश अिस प्रकार दिया जाता है—'अमुक पात्र अमुक कार्यका अभिनय कर रहा है' [शकुन्तला वृक्षसेचनंनाटयति]। यह अिस बातका सबूत बताया जाता है कि नाटकोंमें बातचीत अुतनी महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं मानी जाती थी जितनी क्रिया। डिडेराट नामक पश्चिमी पंडितके बारेमें प्रसिद्ध है कि अुसकी यह अद्भुत् आदत थी कि नाटक देखते समय कान बंद कर लेता था। अैसा करनेसे वह नाटकीय क्रियाको बातचीतसे अलग करके देख सकता था और नाटककी अुत्कृष्टताको ठीक-ठीक समझ सकता था।

अिसमें कोअी संदेह नहीं कि नाटकमें क्रिया ही प्रधान होती है। अिसका मतलब यह हुआ कि नाटककी पोथीमें जो कुछ छपा होता है अुसकी अपेक्षा वही बात ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है जो छपी नहीं होती और सिर्फ

रंगभूमिमें देखी जा सकती है। नाटकका सबसे प्रधान अंग अुसका क्रिया-प्रधान दृश्यांश ही होता है, और अिसीलिये पुराने शास्त्रकार नाटकको दृश्य-काव्य कह गये हैं।

§८४. अुपन्यासमें जितने तत्त्व होते हैं वे सभी (दे० §६३) नाटकमें भी होते हैं। अिन तत्त्वोंके सम्मिलित ज़ोरसे ही नाटक क्रिया-परायण होता है। अिसीलिये अुसमें भी कथावस्तु अुतना ही महत्त्वपूर्ण अंग है जितना अुपन्यासमें, परंतु, जैसा कि शुरूमें ही बताया गया है, नाटककार हर मामलेमें बहुत-से बन्धनोंसे बँधा रहता है। अिसीलिये वह बड़ी सावधानीसे अुन कम-से-कम घटनाओंका सन्निवेश करता है जिसके बिना काम चल ही नहीं सकता। यदि वह अैसे बेकार दृश्योंकी अवतारणा करे, जो नाटकमें कोअी अुद्देश्य ही नहीं सिद्ध करते, तो अुसका नाटक शिथिल हो जायगा। शैथिल्य नाटकका बड़ा भारी दोष है। परन्तु हर बातमें नाटककारको स्टेजकी सुविधा-असुविधाका ध्यान रखना पड़ता है। आजकलके वैज्ञानिक आविष्कारने स्टेजमें अैसी अनेक सुविधाअें ला दी हैं, जिनके कारण आजके नाटककारका प्राचीन नाटककी अपेक्षा कम घटनाओंके सन्निवेशसे भी काम चल जाता है। कालिदास और भवभूतिके नाटकोंमें अैसे बहुतसे दृश्य अवतरित किअे गअे हैं, जिन्हें आजका नाटककार छोड़ देता और स्टेजमें अैसा निर्देश दे देता, जिससे वे बातें बिना कहे ही सहृदय श्रोताकी समझमें आ जातीं। अिब्सन आदि आधुनिक नाटककार अुस प्रकारके घटना-बहुल दृश्योंकी अवतारणा न करके अेक खास बातपर घटनाओंको अिस प्रकार केन्द्रित करते हैं कि अुनका अुद्देश्य प्रतिफलित हो जाता है। अिसलिये नाटकीय कथावस्तु औपन्यासिक कथावस्तुसे ज्यादा कठिन होती है।

अिस (नाटकके) कथावस्तुके दो अंग होते हैं—दृश्यांश और सूच्यांश। अर्थात् अेक तो वह वस्तु जो नाटककी क्रियाको अग्रसर करती है

और सहृदयको रसानुभूतिके अनुकूल करती है। नाटककारको यह समझना चाहिये कि कथावस्तुमें कौन-सा दृश्यांश होगा और कौन-सा सूच्यांश। हिन्दीके अेक नामी नाटककारने रामके वन जाते समय नागरिकोंका रोकना, वशिष्ठका व्याख्यान देना आदि बातें बड़े आडंबरके साथ दृश्य-रूपमें अंकित की हैं, जब कि कैकेयीका वर माँगना और राजाका शोकाकुल होना केवल नागरिकोंके बातचीतके रूपमें सूचित भर कर दिया है। स्पष्ट ही वे कथाके अुस मार्मिक अंशको तरह दे गअे हैं, जो सहृदयके रसबोधको जागृत करता और अभिनेताके अभिनय-कौशलकी कसौटी होता। अगर कालिदासने दो नागरिकोंमें बातचीत कराके यह सूचना दे दी होती कि शकुन्तलाको राजा दुष्यन्तने अस्वीकार कर दिया, तो अुनका 'अभिज्ञान शाकुन्तल' अत्यन्त दरिद्र हो जाता। अिसलिये नाटकके कथावस्तुका विचार करते समय देखना चाहिये कि नाटककार जिन बातोंको रंगमंचपर अभिनीत होते दिखाना चाहता है वे मार्मिक अंश हैं या नहीं, और पूर्ववर्ती या परवर्ती घटनाओंकी अनुभूतिको गाढ़ करनेमें कोअी सहायता पहुँचा रही हैं या नहीं।

§८५. पुराने ज़मानेके नाटकोंमें केवल सूचना देनेके लिये पाँच प्रकारके कौशलका निर्देश है। अिन्हें अर्थोपस्थापक कहा गया है। प्रधान दो हैं—'प्रवेशक' और 'विष्कंभक'। 'विष्कंभक' या 'विष्कंभ' सिर्फ दो पात्रोंमें (जो कभी भी अुत्तम श्रेणीके नहीं होते) बातचीतके द्वारा भावी या अतीत अर्थकी सूचना देनेके लिये अंकके आरंभमें जोड़ा जाता है। जब अिसके पात्र मध्यम श्रेणीके होते थे और शुद्ध (संस्कृत) भाषामें बात करते थे तो अिसे 'शुद्ध विष्कंभक' कहा जाता था और जब अुनमेंसे अेक निम्न-श्रेणीका होता था और लौकिक (प्राकृत) भाषा बोलता था तो अुसे 'मिश्र-विष्कंभक' कहा जाता था। 'विष्कंभक' नाटकके आरंभमें भी आ सकता था। 'प्रवेशक'

ठीक अिसी तरहकी चीज़ है। अन्तर केवल यह है कि अिसके पात्र निम्न-श्रेणीके होते थे, प्राकृतमें बात करते थे और नाटकके आरंभमें अिसका प्रयोग नहीं होता था।

पर्देके भीतरसे किसी आवश्यक बातकी सूचना देनेको 'चूलिका' या 'खण्ड चूलिका' कहते थे। किसी अंकके अन्तमें आगामी अंकके विषयमें दी गअी सूचनाको 'अंकमुख' और अेक अंककी क्रिया लगातार दूसरे अंकतक जब चलती रहे तो अुसे 'अंकावतार' कहा जाता था। अिन कौशलोंसे अैसी बातोंकी सूचना दी जाती थी, जो रंगमंचपर अभिनीत होनेके योग्य नहीं समझी जाती थीं।

§८६. अुपन्यासकी भाँति नाटकमें भी अेकाधिक कथावस्तुअें रह सकती हैं। अेक घटना प्रधान होती है, बाकी अप्रधान। प्रधानको पुराने आचार्य 'आधिकारिक' और अप्रधानको 'प्रासंगिक' कह गअे हैं। रामायणमें रामकी कथा 'आधिकारिक' है और सुग्रीवकी 'प्रासंगिक'। 'प्रासंगिक' कथाअें दो प्रकारकी होती हैं:—

(१) वे, जो 'आधिकारिक' कथाके साथ बराबर चलती रहें और (२) वे जो थोड़ी दूरतक ही चलें। पहलीको 'पताका स्थान' और दूसरीको 'प्रकरी' कहते हैं। नाटकमें यदि दो कथावस्तुओंका अिस प्रकार सन्निवेश हो कि दोनों ही प्रधान-सी लगें या परस्पर अेक-दूसरेसे असम्बद्ध जान पड़ें, वहाँ नाटककार सफल नहीं कहा जा सकता। अिस बातको 'अजातशत्रु' नामक 'प्रसादजी'के नाटकसे समझा जा सकता है। 'अजातशत्रु' की कथामें तीन घटनाअें अेक-दूसरेसे गूँथी गअी हैं :—

(१) मगधके राजघरानेका कलह, जिसके कारण वृद्ध राजा बिंबसार और रानी वासवी राज्यच्युत हुअी हैं, (२) कोशलके राजा प्रसेनजित् और

अुनके पुत्र तथा रानीका पारस्परिक मनोमालिन्य और (३) कौशाम्बीके राजा अुदयन और अुनकी रानी मागंधी तथा पद्मावतीका विवाद। मागंधी ही अन्तमें चलकर श्यामा वेश्या बन जाती है और वही आगे जाकर आम्र-पाली। यह तीसरी घटना बहुत सार्थक नहीं है। मागंधीका श्यामाके रूपमें घर छोड़कर बाज़ारमें जा बैठना थोड़ा-सा नाटकीय अुद्देश्य सिद्ध ज़रूर करता है, पर वह नाटकका अत्यन्त आवश्यक अंग नहीं है। अब अिन घटनाओंपर विचार किया जाय।

वस्तुतः प्रथमोक्त दो राजघरानोंके घरेलू कलहसे ही नाटककी घटना बनी हुअी है। वे दोनों घटनाअें सामानान्तर-सी हैं, यद्यपि दोनोंका नियोग दो तरहसे हुआ है। दोनोंमें ही पिता-पुत्रका झगड़ा है। दोनोंमें ही विद्रोही पुत्रोंकी माताअें अुन्हें अुत्तेजित करनेमें प्रमुख भाग लेती हैं। परन्तु मगधका बूढ़ा सम्राट् बिंबसार नकारात्मक चरित्रका पात्र है (दे० § ७५), जब कि कौशलका प्रसेनजित् धनात्मक (दे० § ७५)। अिसका नतीजा यह होता है कि पहला सिंहासन त्यागकर बंदी हो जाता है और अुसका विद्रोही पुत्र सम्राट् बन बैठता है, जब कि दूसरा (प्रसेनजित्) गद्दीपर जमा रहता है और पुत्रको देश-निकालेकी सज़ा देता है।

ये दोनों कथानक बहुत कुछ निरपेक्ष-से हैं। कोशलवाली कहानी मगधवाली कहानीकी अपेक्षा गौण केवल अिस अर्थमें है कि मगधका गृह-विवाद पहले होता है और अुसका समाचार पानेपर ही कोशलवाला गृह-विवाद आरंभ हो जाता है, यद्यपि आगेकी घटनाओंसे हम जानते हैं कि अिस गृह-विवादके पीछे बहुत पुराना झगड़ा है। यह निर्णय करना कठिन है कि अिनमें कौन-सी घटना 'आधिकारिक' है और कौन-सी 'प्रासंगिक'। नाटकके नामसे जान पड़ता है कि मगधवाली कथाको ही नाटककार प्रधान

मानता है। अिस कथाको अग्रसर करनेमें कोशलवाली घटनासे थोड़ी सहायता मिली ज़रूर है, पर वहाँ भी यह निर्णय करना कठिन ही है कि अजातको शैलेंद्रसे अधिक सहायता मिली है या शैलेंद्रको अजातसे। केवल अेक चरित्र—मल्लिकासे—जो कोशलवाली घटनाका परिणाम है—दोनों घटनाओंका घनिष्ठ संबंध है और अिस अेक ही सूत्रकी सहायिका होनेके कारण कोशलवाली घटनामें प्रासंगिकता आ गअी है। अुदयनवाली तीसरी कथाकी अेकमात्र देन श्यामा है, जो नाटकके घटना-विकासमें महत्त्वपूर्ण भाग लेती है, पर अगर वह पहले मागंधीके रूपमें रानी न रही होती और सिर्फ काशीकी वेश्या ही होती तो नाटककी कोअी हानि नहीं होती। अुसके रानीत्वकी सूचना बादमें केवल विदूषककी बातचीतमें आती है—खुद वह विदूषक भी अिस दृश्यमें केवल अिसलिये खड़ा कर दिया गया है कि नाटककारने आम्रपालीकी जो कहानी नाटकमें लिख दी है अुसको कुछ सार्थक बना दिया जाय। किन्तु वह भी बेकार ही है। यदि आम्रपालीके मागंधी रूपका कथन नितान्त आवश्यक भी होता तो कअी दृश्योंकी अवतरणिका न करके अुसे सूच्य रूपमें अुपस्थित किया जा सकता था।

§८७. कुछ लोगोंने यह भ्रम फैला दिया है कि नाटकमें चरित्र-चित्रण गौण वस्तु है। वस्तुतः चरित्र-चित्रण और घटना-विन्यास दोनों सम्मिलित भावसे ही अुस महान् गुणको अुत्पन्न करते हैं जिसे क्रिया कहते हैं। अुत्तम चरित्र-चित्रण नाटककारकी कृतिको महान् बनाता है। सिर्फ घटनाअें ही यदि बाहरसे आ-आकर पात्रोंको विशेष दिशामें अग्रसर करती रहें तो पात्र निर्जीव जड़-पिंडके समान मालूम होंगे और नाटकीय प्रभाव अुत्पन्न नहीं हो सकेगा। शकुन्तलाका आश्रममें आत्म-समर्पण और बादमें अपने प्रेमीके द्वारा प्रत्याख्यात होकर रोष-दीप्त होना महज़ अपने-आपमें

स्वतंत्र बाहरी घटनाओं नहीं हैं, बल्कि शकुन्तलाके सरल और निष्कपट चरित्रके भीतरसे अुत्पन्न हुअी हैं। 'अुत्तर रामचरित' में राम-द्वारा सीताका निर्वासन रामके भीतरी चरित्रकी तर्क-संगत परिणति है।

यह ज़रूर है कि नाटककार अुपन्यासकारकी भाँति अपने पात्रोंके चरित्र-विश्लेषणका सुयोग नहीं पाता। अुसे अपने पात्रोंका चरित्र-चित्रण थोड़े-से अिशारोंसे कर देना पड़ता है। अुसका प्रधान अवलंब अुस पात्रकी बातचीत और अन्य पात्रोंकी, अुसके संबंधमें की हुअी, अुक्तियाँ होती हैं। परन्तु, जैसा कि शुरूमें ही कहा गया है, नाटकमें यह बात अुतनी महत्त्व-पूर्ण नहीं है कि पात्र क्या कहता है, महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह क्या करता है। घटना और पात्र अेक दूसरेसे धक्का खाकर आगे बढ़ते रहते हैं और अिस घात-प्रतिघातसे अुत्पन्न क्रियाओंके द्वारा हम पात्रोंके चरित्ररूपी ग्रंथके पन्नेपर पन्ने खोलते जाते हैं। नाटककारका बड़ा कठिन कार्य यह है कि वह प्रतिमुहूर्त भिन्न-भिन्न पात्रोंके रूपमें नया-नया मनोभाव स्वीकार करता रहता है और अिसीलिये अुसका व्यक्तिगत मत और विचार बराबर दबते रहते हैं। अिसी बातको नाटकका 'निर्वैयक्तिक तत्त्व कहते' हैं।

§८८. कथा-वस्तु और पात्रोंके घात-प्रतिघातसे नाटक महान् बनता है। नाटककार यदि पात्रों और घटनाओंको होशियारीसे सम्हाल सका और घटना-विन्यासकी सुकुमार अवस्थाओंको पहचान सका, तो अत्यन्त मामूली कहानीको भी महिमा-मण्डित कर दे सकता है। अिसका सर्वोत्तम अुदाहरण कालिदासका 'अभिज्ञान शाकुन्तल' है, जिसे संक्षेपमें 'शकुन्तला नाटक' कहा जाता है। महाभारतकी सीधी-सादी कहानीको सम्हालनेमें नाटककारने कमालकी सुकुमार प्रतिभाका परिचय दिया है।

महाभारतकी कहानी सीधी है। राजा दुष्यन्त कण्वके आश्रममें जाता है। शकुन्तलाको देखकर आकृष्ट होता है। वह निस्संकोच अपना

अप्सरासे जन्म होना बता जाती है। दोनोंमें कुछ बहस होनेके बाद अुसे यक़ीन हो जाता है कि गांधर्व-विवाह धर्म-संगत है। गांधर्व-विवाह हो जाता है, परन्तु अुसमें शकुन्तला शर्त करा लेती है कि अुसीका पुत्र राजा होगा। राजा राजधानीको लौट आता है। शकुन्तलाके पुत्र होता है। अुसे ऋषिके शिष्य दरबारतक पहुँचाकर चले आते हैं। राजा अस्वीकार करता है। शकुन्तला कड़ी-कड़ी बातें सुनाती है। फिर आकाशवाणी होती है कि शकुन्तलाका पुत्र वस्तुतः दुष्यन्तका ही पुत्र है और राजा अुसे स्वीकार करता है तथा बताता है कि चालाकीसे देव-वाणी द्वारा यह कहलवा लेना ही अुसका अुद्देश्य था कि भरत वस्तुतः दुष्यन्तका ही पुत्र है।

यही वह सीधी-सादी कहानी है जिसे कालिदासने अपने नाटकके मूल कथानकके रूपमें पाया था। अिस अत्यन्त सरल कहानीको कालिदासकी जादू-भरी लेखनीने अेकदम नअी काया दे दी है। यहाँ लज्जाशीला तापस-कुमारी अपना जन्म-वृत्तान्त स्वयं नहीं कहती। अुसकी सखियाँ केवल अुस ओर अिशारा-भर कर देती हैं। बाक़ी बुद्धिमान् राजाको स्वयं समझ लेनेको छोड़ देती हैं। अुसके प्रेमोदय और गांधर्व-विवाह तूलीके अत्यन्त सुकुमार स्पर्शसे चित्रित किअे गअे हैं। राजाके अनुचित आचरणको शापकी कथासे ढँक दिया गया है, और अिस आचरणकी थोड़ी-सी जिम्मेदारी शकुन्तलापर भी डालकर कविने करुणतर अनुभूति जागृत करनेका अवसर दिया है।

शकुन्तला जब दरबारमें पति-दर्शनकी आशासे अुपस्थित होती है तो शापकी घटना अेक विचित्र नाटकीय 'भाग्य-विडंबन' (दे० ६९५) का काम करती है। राजाके मर्मान्तक प्रत्याख्यानको अिस शापकी कथाने अैसा बना दिया है कि सहृदयका क्षोभ अेक विचित्र करुण रससे भीगकर अूपर आनेके अयोग्य हो जाता है। राजापर झुँझलानेके बदले वह अुसपर दया

करता है। शकुन्तलाको शापके वृत्तान्तोंसे अनभिज्ञ रखकर नाटककारने अिस प्रसंगको अद्‌भुत मानसिक द्वन्द्वोंका करुण चित्र बना दिया है। शकुन्तलाका रोष, राजाका प्रत्याख्यान, ऋषि-शिष्योंका शकुन्तलाको छोड़ जाना—सब कुछ विचित्र रस-परिपाकके कारण बन जाते हैं।

महाभारतकी शकुन्तलाकी भाँति कालिदासकी शकुन्तला राजाको शापकी धमकी नहीं देती। अुसकी बातें राजवधू और ऋषि-कन्याके गौरवके अनुकूल हैं। दुष्यन्त अुत्तम नायक है, क्योंकि वह राजकर्तव्योंका समुचित पालन करनेवाला है। अुसका निःस्वार्थ कर्तव्यमय जीवन राजर्षिकी तपस्याका जीवन है। शकुन्तलाका परित्याग अुसके अुज्ज्वल चरित्रको अुज्ज्वलतर बनाने योग्य ही सिद्ध हुआ है; क्योंकि अनजानी पराअी स्त्रीको पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लेना भी पाप है, और राजा असलमें अिस पापसे बचनेकी ही कोशिश कर रहा था। शकुन्तलाका अुसके प्रति जो प्रेम है वह दुःखकी अग्निसे परिशुद्ध है। अन्तिम मिलन प्रेम-द्रविता बालिकाका नहीं, बल्कि तपःशुद्धा, मातृत्वके गौरवसे गौरवान्वित, विगतकल्मषा, साध्वी शकुन्तलाका मिलन है।

विरोधी परिस्थितियों और व्यक्तित्वोंकी सृष्टि करके अपने पात्रोंके चरित्र-गुणको अुज्ज्वल करनेमें भी कविने कमालकी होशियारीसे काम लिया है। लेकिन शकुन्तलाकी तुलनामें किसी भी स्त्री-पात्रको रंगमंचपर दर्शकके सामने नहीं आने दिया है। विदूषक सदा राजाके साथ रहता है, परन्तु अगर वह शकुन्तलाके प्रेमका साक्षी होता तो सारे नाटकका रस फीका हो जाता। ठीक मौक़े परसे नाटककारने अुसे कौशलपूर्वक हटा दिया है।

कण्व बड़ा आकर्षक चित्र है। वे सन्तानहीन ऋषि हैं, पर संतानके अहैतुक प्रेमसे अुनका हृदय भरा है। मरीच और दुर्वासा अिन दो ऋषियोंको

तुलनामें खड़ा करके कविने अुनके हृदयकी गंभीरता, अुदारता और प्रेम-प्रवणताको अति अुज्ज्वल कर दिया है। अिसी प्रकार और चरित्रोंके चित्रणमें और घटनाओंके गति-विकासमें अुनका संयोजन करके 'शकुन्तला' को कालिदासने विश्व-साहित्यकी अमर विभूति बना दिया है। चरित्र-चित्रण अितना सूक्ष्म और कौशलपूर्ण है कि थोड़े समयमें दिख जानेवाले अत्यन्त गौण चरित्र भी स्पष्ट हो अुठे हैं। शार्ङ्गधर और शारद्वत बहुत थोड़े समयके लिये रंगमंचपर आते हैं, बातें भी कम ही करते हैं, पर अुतनेमें ही स्पष्ट हो गया है कि शार्ङ्गधर अुद्धत गर्बीला है, राजाको खरी-खरी सुना देता है; और शारद्वत शान्त गंभीर है, और कन्या-पक्षके आदमीको जिस प्रकार बात करनी चाहिये वैसी बात करता है।

§८९. मतलब यह कि पात्रोंके चरित्र और घटनाओं अेक-दूसरेसे टकराकर जब नाटकको गतिशील बनाये रखें तभी वे सफल होती हैं। यह बात अुपन्यासके लिये भी सत्य है। कोअी भी रचना तभी सफल हो सकती है, जब हम यह अनुभव करते रहें कि कुछ भिन्न-भिन्न स्वभावके व्यक्ति विभिन्न अुद्देश्योंको लेकर अेकत्र हुअे, और अुनके स्वभावगत और अुद्देश्यगत विरोधोंके संघर्षसे कुछ परिस्थितियोंमें घटनाओं अग्रसर होती गअीं। अिसलिये पात्रोंका स्वभाव और अुनका अुद्देश्य नाटकीय कथा-वस्तुके लिये परम आवश्यक है। अुनकी अुपेक्षा दोष है।

§९०. जैसा कि अूपर बताया गया है, पात्रोंके चरित्र-चित्रणका अेक प्रधान अवलंब अुनकी बातचीत है। बातचीतसे हम अुनके भीतरी मनोभावोंका आभास पाते हैं और अुनकी क्रियाओंके पीछे रहनेवाले अुनके विचार समझ पाते हैं। अिसीलिये भरतमुनिके 'नाट्यशास्त्र'में पात्रोंकी बातचीतको नाट्यका शरीर बताया गया है। अुपन्यासमें बातचीतके द्वारा लेखक अपने अुद्देश्यको

व्यक्त कर सकता है, अपने मान्य सिद्धान्तोंके गुण-दोषकी विवेचना कर सकता है, अन्य पात्रोंके चरित्रकी व्याख्या करा सकता है, पर नाटककारको अितना अवकाश नहीं होता। नाटककार जो बातचीत कराता है अुसका अुद्देश्य चरित्रके भीतरी मनोभावों और वास्तविक स्वभावको व्यक्त करके अुसके चरित्रगत वैशिष्ट्यको दिखाना होता है। नाटकीय वार्तालापका औचित्य विचार करते समय यह देखना चाहिये कि अिससे पात्रके चरित्रगत विशेषतापर क्या प्रकाश पड़ता है। अिसीपरसे अुसकी सार्थकताका निर्णय होना चाहिये।

§९१. अैसा संभव है कि पात्र अेक अैसी बात प्रकाश्य रूपमें कहे जो अुसका भीतरी मनोभाव न हो, किसी कारणवश वह झूठ बोल रहा हो। अैसी हालतमें नाटककार अेक 'कौशल' अवलंबन करता है। वह या तो पात्रसे कोअी 'स्वगत' अुक्ति कराता है—अर्थात् पात्र अपने आपसे ही बातचीत करके असली रहस्य खोल देता है, या फिर, यदि पात्रका कोअी विश्वसनीय साथी वहाँ मौजूद हो तो अुससे 'जनान्तिक'में बात करा देता है। यह 'जनान्तिकवाली' बात सिर्फ अुसका विश्वासपात्र व्यक्ति ही सुनता है।

ये दोनों बातें अजीब-सी लगती हैं। रंगमंचसे बहुत दूर बैठा हुआ श्रोता 'जनान्तिक' की बातें सुन लेता है, पर पास खड़ा आदमी नहीं सुन पाता, अैसा मान लिया जाता है। 'स्वगत' अुक्तिमें तो कभी-कभी लंबा व्याख्यान होता है। नाटकके रंगमंचके सिवा दुनियामें और कहीं भी दुरुस्त होशवाला आदमी अिस प्रकार अपने आपको व्याख्यान नहीं सुनाता। आलोचकोंमें अिस प्रथाके औचित्यको लेकर काफी बहसें हुअी हैं, पर ये दोनों बातें सारे संसारके नाटककारोंकी चिराचरित प्रथाअें हैं।

वस्तुतः स्वगत-अुक्ति पात्रका मानसिक सोच और वितर्क है। नाटककार अपने श्रोताओंकी सुविधाके लिये अुन वितर्कोंको ज़ोरसे बुलवाता

है। ज़मानेसे श्रोता भी अुसके साथ अिस प्रकारकी रियायत करता आता है। भारतीय नाटकोंमें अिससे मिलती-जुलती अेक और भी विधि है। अिसे 'आकाश-भाषित' कहते हैं। अिसमें पात्र अिस प्रकार बातचीत करता है मानों दुतल्ले परसे कोअी अुससे कुछ पूछ रहा है और वह अुसका जवाब दे रहा है। प्रतिबार वह श्रोताओंके सुभीतेके लिये स्वयं ही पूछ लेता है— 'क्या कहा ?—अमुक बात ?' और फिर अुस अमुक बातका जवाब देता है।

आजकलकी यथार्थवादी प्रवृत्ति अिस प्रकारकी रूढ़ियोंको भद्दी रूढ़िके रूपमें ही ग्रहण करने लगी है। आधुनिक नाटककार अिस प्रथाको छोड़ने लगे हैं और साधारण बातचीतके भीतरसे ही पात्रके भीतरी मनोभावोंको चित्रित करनेका प्रयत्न करने लगे हैं। यह कठिन कार्य और भी कठिन अिसलिये हो गया है कि आजकलके नाटक अधिकाधिक मनोवैज्ञानिक होते जा रहे हैं; फिर भी, आधुनिक नाटककारने सफलतापूर्वक अिन रूढ़ियोंका परित्याग किया है।

§९२ 'रंगमंच' की सुविधा-असुविधाके अनुसार नाटककी कारीगरीमें बराबर परिवर्तन होता आया है। आजकल 'रंगमंच' को वास्तविक और यथार्थ रखनेकी प्रवृत्ति बहुत बढ़ गअी है। अैसा करनेसे सब समय दर्शकके साथ न्याय नहीं किया जाता। दर्शककी कल्पनाको भी पूरा अवकाश मिलना चाहिये। 'रंगमंच' के दृश्यकी ओर अिशारा-भर हो और [illegible] की दर्शककी कल्पनाके अूपर छोड़ दिया जाय तो ज़्यादा सरसता आ सकती है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने 'रंगमंच'को अतियथार्थवादी बनानेकी प्रवृत्तिको 'लड़कपन' कहा था ! अिस दृष्टिसे प्राचीन भारतीय 'रंगमंच' आधुनिक 'रंगमंचों'की अपेक्षा अधिक सरस और गंभीर कहे जा सकते हैं, यद्यपि वे अितने सुसज्जित नहीं होते थे।

भारतीय आचार्योंने अभिनयके चार अंग माने हैं :—'आंगिक', 'वाचिक', 'आहार्य' और 'सात्त्विक'। 'आंगिक' अभिनय देह और मुख-संबंधी अभिनयको कहते हैं। प्राचीन ग्रंथोंमें सिर, हाथ, कटि, वक्ष, पार्श्व और पैर आदि अंगोंके सैकड़ों प्रकारके अभिनय बताअे गअे हैं। अिन अभि-नयोंका किस-किस कार्यमें प्रयोग होगा, यह भी विस्तृत रूपसे बताया गया है। 'वाचिक' वचन संबंधी अभिनयको कहते हैं। पदोंका स्पष्ट अुच्चारण, अुचित स्थानपर ज़ोर (काकु) आदिकी कला अिसीमें गिनी जाती है। 'आहार्य' रंगमंचकी सजावट और पात्रोंके वेश-विन्यासको कहते हैं। रंगमंचमें यथार्थताकी झलक ले आ देनेके लिये अुन दिनों तीन प्रकारके पुस्त व्यवहृत होते थे। वे या तो बाँस या सरकंडेके बने होते थे जिनपर कपड़ा या चमड़ा मढ़ दिया जाता था, ताकि पहाड़, वन आदिकी झलक दे सकें; या फिर यंत्रादिकी सहायतासे फर्जी बना लिये जाते थे; या अभिनेता अिस प्रकारकी चेष्टाओंका अभिनय करता था कि जिससे दर्शकको अुन वस्तुओंका बोध अपने-आप हो जाता था। पुरुषों और स्त्रियोंकी अुपयुक्त वेश-रचना और अुनका यथाविधि रंगमंचपर अुतरना भी 'आहार्य' अभिनयके ही अंग समझे जाते थे। परन्तु अिन तीनों ही की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है 'सात्त्विक' अभिनय। भिन्न-भिन्न रसों और भावोंके अभिनयमें ही अभिनेता या अभिनेत्रीकी वास्तविक परीक्षा होती है।

अिस प्रकार रंगमंचकी सजावट, पात्रोंका वेश-विन्यास, अुनकी बातचीत, अुनकी आंगिक गति और अुनका भावात्मक अभिनय भी भारतीय शास्त्रकारकी दृष्टिमें अभिनय ही हैं। 'अभिनय' शब्दका अर्थ वह 'क्रिया' है जो दर्शकको 'रसानुभूति'की ओर ले जाय। रंगमंचकी सजावट, पात्रोंकी बातचीत, अुनका वेश-विन्यास आदि सभी बातें रसानुभूतिकी सहायिका हैं।

परन्तु यदि ये ही प्रधान हो अुठें और रसानुभूति गौण हो जाय तो ये दोष हो जायेंगी। रंगमंचके अत्यधिक यथार्थवादी बनानेके प्रयासी भिस बातको भूल जाते हैं।

§९३. प्रत्येक नाटकीय कथा कुछ विरोधोंको लेकर अग्रसर होती है। जो कथा सरल होती है अुसमें यह विरोध दो व्यक्तियोंमें होता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि विरोधके लिये हर हालतमें अेक नायक और अेक प्रतिनायक रहें ही। आधुनिक नाटकोंमें यह विरोध नाना भावसे प्रदर्शित हुआ है। नायकका अुसके भाग्य या परिस्थितियोंके साथ विरोध हो सकता है, सामाजिक रूढ़ियोंके साथ विरोध हो सकता है और फिर अपने मतके परस्पर विरोधी आदर्शोंके संघर्षके रूपमें भी हो सकता है। विरोध व्यक्तियों, मनोभावों, और स्वार्थोंको केन्द्र करके नाना रूपमें प्रकट हो सकता है। भिस विरोधसे ही नाटककी घटनामें गति या क्रिया आती है। विरोधके आरंभसे ही वस्तुतः कथा-वस्तुका आरंभ होता है और अुसके अन्तसे ही अुसका अन्त हो जाता है। विरोध कथा-वस्तुको आश्रय करके अग्रसर होता हुआ चरम-बिंदुतक अुठता है, जहाँसे अेक पक्षकी हार शुरू होती है और अेक पक्षकी जीत, और अन्तमें जब हारनेवाला पक्ष अेकदम हार जाता है तो विरोधकी समाप्ति हो जाती है।

भिन क्रियाओंको पश्चिमके पंडितोंने पाँच भागोंमें बाँट लिया है :—
(१) पहली 'आरंभावस्था' है, जिसमें कुछ अैसी घटनाओंकी अवतारणा होती है जिनमें विरोध अंकुरित होता है। (२) दूसरी 'विकासावस्था' है, जहाँ विरोधका विकास होता है, वह अग्रसर होता जाता है। (३) तीसरी अवस्थाका नाम 'चरमबिंदु' है, यहाँ विरोध अपनी सर्वोच्च सीमापर आ जाता है। (४) चौथी अवस्था 'ह्रासावस्था' कहलाती है, भिसमें विरोध

अुतारकी ओर होता है और अेक पक्ष निश्चित रूपसे हारकी ओर अग्रसर होता रहता है। (५) पाँचवीं अवस्थाका नाम 'समाप्ति' है।

अिन पाँच अवस्थाओं—'आरंभ'-'विकास','चरमबिंदु','ह्रासावस्था', 'समाप्ति'—को लक्ष्यमें रखकर पाँच अंकके नाटक लिखे जाते थे। पर नाना कारणोंसे अंकोंका विभाजन क्वचित्-कदाचित् ही अिन पाँच अवस्थाओंके स्वाभाविक विकासके आधारपर होता है। कभी दो अंकोंतक 'आरंभ' चल रहा है, दो अंकोंतक 'विकास' चलता है। फिर धड़ाधड़ अन्तिम अंकोंमें 'चरम-बिंदु', 'ह्रास' और 'समाप्ति'की योजना कर दी जाती है। यह दोष है। होना यह चाहिये कि कथा-वस्तुकी अिन पाँच अवस्थाओंके विकासमें सामंजस्य हो। सभी नाटक पाँच अंकके नहीं होते, कुछ दस अंकके भी होते हैं, कुछ चार अंकके और कुछ तो अेक ही अंकके। परन्तु ये पाँच तत्त्व सबमें वर्तमान रहते हैं। अैसी हालतमें यह तो कहना ही व्यर्थ है कि प्रत्येक अवस्थाको अेक-अेक अंकमें समाप्त कर देना संभव नहीं है, क्योंकि सभी नाटक पाँच अंकके होते ही नहीं। फिर भी यह आवश्यक है कि नाटककार अिन पाँच अवस्थाओंके सामंजस्य रखे।

आलोचकोंने त्रिभुजाकार कथा-वस्तुकी कल्पना करके यह व्यवस्था दी है कि अुत्तम वस्तु वह है जहाँ समत्रिबाहु त्रिभुजकी आकृति हो—अर्थात् प्रत्येक अवस्थाके बीच समान-समान काल लगना अुत्तम है। वस्तुतः प्रत्येक कथाके लिये अेक ही प्रकारकी सलाह नहीं दी जा सकती, परन्तु अुनकी यथासंभव समव्यवधानता होनी चाहिये।

§९४. अिन पाँच अवस्थाओंके साथ पुराने भारतीय आचार्योंकी बनाओी हुअी पाँच अवस्थाओंकी तुलना की गअी है। ये पाँच अवस्थाअें हैं—'आरंभ', 'प्रयत्न', 'प्राप्त्याशा' 'नियताप्ति' और 'फलागम'। अिस

विभागमें यह मान लिया गया है कि नाटककी समस्त क्रियाओंका कोअी फल होता है। 'आरंभ' नामक अवस्थामें वह फल अंकुरित होता है। 'प्रयत्न' में नायक अुसे पानेका प्रयत्न करता है। 'प्राप्त्याशा' में अुस फलके पानेकी आशा होती है। फिर मार्गमें आये हुये विघ्नोंका अुच्छेद होता है और फल प्राप्त करना निश्चित हो जाता है, अिस अवस्थाका नाम 'नियताप्ति' है। अन्तमें 'फलागम' होता है अर्थात् नायकको अभिलषित फल मिल जाता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू श्यामसुंदरदासने अिन दोनों विभागोंमें जो दृष्टिकोण लक्षित हो रहे हैं अुनका अन्तर अिस प्रकार समझाया है:—
"विरोध और झगड़े आजकलकी सभ्यताके परिणाम हैं। कम-से-कम अिनकी विकास और वृद्धि आजकलकी सभ्यतामें हुअी है। प्राचीन भारतमें भी विरोध और झगड़े थे, पर वे अितने अधिक और प्रत्यक्ष नहीं थे कि रंगशालाओंपर अुनके अभिनयकी आवश्यकता होती। हमारे यहाँके प्राचीन नाटक तो केवल धर्म, अर्थ और कामके अुद्देश्यसे रचे और खेले जाते थे।"

हमने अूपर देखा है कि पाश्चिमी पंडितोंने जिसे 'विरोध' कहा है वह दो व्यक्तियों या दलोंके विरोधतक ही सीमित नहीं है, वह सत् और असत्के विरोधतक भी मर्यादित नहीं है, वह नायकके भीतरी मनोभावों, सामाजिक रूढ़ियों या परिस्थितियोंके साथ भी हो सकता है। नाटकमें 'विरोध' अिसलिये नहीं होता कि विरोधको आजकल रंगभूमिमें दिखानेकी कोअी 'आवश्यकता' आ पड़ी है, बल्कि अिसलिये होता है कि किसी-न-किसी विरोधके भीतरसे ही नाटककी क्रिया अग्रसर हो सकती है। यह गति-शास्त्रका सामान्य नियम है कि दो विरोधी शक्तियोंके संघर्षसे ही गति पैदा होती है।

यह 'विरोध' 'मृच्छकटिक' में भी है और 'शकुन्तला' में भी है। * अितना अवश्य ही कहा जा सकता है कि अिन नाटकोंमें 'विरोध'का सुर कभी प्रबल करके नहीं दिखाया जाता, अुसका अन्त सामंजस्यमें होता है। 'अुत्तरचरित' भवभूतिका लिखा हुआ प्रसिद्ध भारतीय नाटक है। अिस नाटकका विश्लेषण करके देखा जाय कि वहाँ यह विरोध या द्वंद्व किस प्रकार दिखाया गया है। अिस नाटकका हिंदी अनुवाद कविवर सत्यनारायण 'कविरत्न'ने किया था।

§९५. कअी आलोचकोंने कहा है कि भवभूतिका 'अुत्तरचरित' नाटककी अपेक्षा काव्य अधिक है। अिसमें बारह वर्षसे भी अधिक दीर्घकालकी घटनाअें कही गअी हैं। और कुछ पात्र तो (जैसे— लव, कुश और चंद्रकेतु) अैसे हैं जो नाटकमें महत्वपूर्ण भाग लेते हैं, फिर भी नाटककी घटना आरंभ होनेके समय जनमे ही नहीं थे! जिस वस्तुको पाश्चिमी नाट्य-शास्त्रियोंने 'समय-संकलन' और 'देश-संकलन' कहा है [दे० §९९] अुसकी भवभूतिने बिल्कुल

---

* यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भारतीय नाट्य-शास्त्रमें बताअी हुअी ये अवस्थाअें नाटकीय कथानकके विकासकी अवस्थाअें हैं। नाटकके पाँच अुपादान और होते हैं। अुन्हें शास्त्रमें 'अर्थ प्रकृति' कहा जाता है। पाँच और अवस्थाअें गिनाअी गअी हैं, जिनका नाम 'संधि' दिया गया है। ये नाटकीय क्रियाको ध्यानमें रखकर अुद्भावित की गअी हैं। 'संधि' का शब्दार्थ 'जोड़' है और अिसीलिये सहज ही अनुमान होता है कि पहले बताअी हुअी अवस्थाओंको जोड़ना ही संधियोंका कार्य है। जहाँ नाटकीय क्रियाका स्वाभाविक विराम होता है, अेक अवस्थासे दूसरी अवस्था संक्रमित होती है, वही संधि होती है। पाँच संधियाँ अिस प्रकार हैं:—मुख (आरंभ), प्रतिमुख (क्रियाकी प्रगति), गर्भ (अुद्भव या विकास), विमर्श (विराम) और परिसमाप्ति या निर्वहण।

अुपेक्षा की है, परन्तु फिर भी अुनकी प्रतिभाने अितने दीर्घकालमें व्याप्त घटनाको बड़ी सावधानीसे सम्हाला है। पाठक समयके व्यवधानको अेकदम भूल जाता है। भवभूतिकी अुर्वर कल्पनाने अेक-पर-अेक अैसे आकर्षक और हृदयग्राही चित्रोंकी सृष्टि की है कि पाठक अुन्हींमें अुलझा रह जाता है। प्रथम अंकमें अुस अपूर्व योग्यताका परिचय मिलने लगता है। नाटकमें जब कोअी अैसा दृश्य आता है, जिसमें पात्र विपत्तिके कगारपर खड़ा होकर सुखकी कल्पना करता रहता है और वह स्वयं तो अुस विपत्तिकी खबर नहीं रखता पर दर्शक अुसे जानता होता है, तो अिस परिस्थितिको नाटकीय 'भाग्य-विडंबन' कहते हैं।

प्रथम अंकमें सीता अेक अतिशय क्रूर भाग्य-विडंबनाके दरवाजेपर खड़ी हैं। यह वे नहीं जानतीं और पूर्व जीवनके वनवासकालीन आनंद और दुःखसे मिश्रित चित्रोंको देखती जाती हैं, तथा फिर अेक बार अुन दृश्योंके देखनेकी अभिलाषा प्रकट करती हैं। अिस प्रकार अुनके भावी निर्वासनका बहाना रामको बड़ी आसानीसे मिल जाता है। अुस समय समस्त वृद्धजनोंको अयोध्यासे दूर रखकर नाटककारने रामके क्रूर निश्चयके मार्गकी सभी बाधाओंको अेकदम दूर कर दिया है। अिस प्रकार शुरूमें नाटकके भीतर रामका अन्तर्निहित 'द्वंद्व' या 'विरोध' का सूत्रपात हो जाता है। समस्त नाटकके भीतर रामका अन्तर्द्वन्द्व—अुनके भीतरी प्रेम और बाहरी राजकर्तव्यके द्वन्द्व—बहुत चतुरताके साथ शुरूमें ही दिखा दिया गया है।

रामके चरित्रमें व्यक्तिकी अपेक्षा राजाके बाह्य कर्तव्यका जो प्राधान्य है अुसीने नाटकको अेक अपूर्व करुण भावसे आर्द्र बना दिया है। परन्तु चूँकि सीताके चरित्रमें अेकरसता अधिक है अिसलिये नाटककार शुरूमें ही अुनकी ओर पाठकका ध्यान नहीं आकृष्ट कर सका है परन्तु तृतीय अंकमें

जहाँ सीता अपने प्रियतमको देखती और क्षमा करती हैं वहाँ भवभूतिका चित्रण अत्यन्त सुकुमार हुआ है। राम यद्यपि कर्तव्य-पालनमें कठोर हैं पर सीताके प्रति अुनका प्रेम निस्संदेह अत्यधिक है। रामके चरित्रगत अिस भीतरी विरोधको जितना अिस अंककी घटनाअें स्पष्ट करती हैं अुतना और किसी अंककी नहीं। देशी और विदेशी सभी पंडितोंने स्वीकार किया है कि अिस अंकमें सीताके शान्त, गंभीर और अुदार आत्मसमर्पणमें अेक अैसी रस-वस्तुका साक्षात्कार होता है जो भवभूतिकी अपनी विशेषता है। सारे अंकमें यद्यपि कुछ अप्राकृतिक अवस्थाओंका सहारा नाटककारने लिया है, पर बड़ी चतुरताके साथ अिस दैवी सहायताने भावी मिलन और प्रेमको सांद्ररूपमें प्रकट करनेका मार्ग प्रशस्त कर लिया है।

'अुत्तरचरित'का तृतीय अंक कवित्व, कल्पना और रस-परिपाककी दृष्टिसे बेजोड़ है। अंतिम अंकमें भवभूतिकी नाटकीय प्रतिभा सर्वोच्च स्थानपर अुठी है। केवल भारतीय नाटकोंकी मिलनान्त होनेवाली रूढ़िके पालनके लिये भवभूतिने अन्तिम अंकमें मिलन नहीं कराया है। वस्तुतः नाटक जिस रास्ते अग्रसर हुआ है अुसकी सर्वोत्तम परिणति यही है। अैसा न होता तो, जैसा कि अे. बी. कीथने लिखा है, आधुनिक पश्चिमी आलोचककी दृष्टिमें भी नाटक अपूर्ण ही रह जाता।

§९६. नाटककी क्रिया वस्तुतः दो प्रकारकी होती है :—'साक्षात् प्रवर्तित' या 'प्रत्यक्ष' तथा 'असाक्षात् प्रवर्तित' या 'परोक्ष'। 'प्रत्यक्ष' और 'परोक्ष' शब्द अधिक सुगम हैं, अिनके लिये 'साक्षात् प्रवर्तित' और 'असाक्षात् प्रवर्तित' ये दो शब्द शास्त्रमें प्रयुक्त होते हैं। 'प्रत्यक्ष' क्रिया नाटकके रंगमंचपर दिखाअी देती है। मारना, लड़ना आदि अैसी ही क्रियाअें हैं, परन्तु 'अप्रत्यक्ष' या 'परोक्ष' क्रियाअें सात्विक अभिनयसे दिखाअी

जाती हैं। [दे० §९२]। दुःखी होना, आनंदित होना आदि अैसी ही क्रियाअें हैं। शेक्सपियरके नाटकोंमें 'प्रत्यक्ष' क्रियाका बाहुल्य है और बर्नर्डशा तथा रवीन्द्रनाथके नाटकोंमें 'परोक्ष' क्रियाका। दोनोंमें सामंजस्य-विधान होना चाहिये। नाटककारको अिस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि अकारण कोअी क्रिया न दिखाअी जाय। प्रत्येक क्रियाका अुद्देश्य होना चाहिये। अिसी अुद्देश्यसे नाटककी क्रिया रसोद्रेकमें सहायता करती है।

§९७. भरतमुनिने कहा है कि नाटक अवस्थाओंके अनुकरणका नाम है। अनुकरण केवल तीन तत्त्वोंतक ही सीमित है —(१) घटनाका (२) पात्रका और (३) बातचीतका। तीनोंके अनुकरण तीन-तीन तरहसे हो सकते हैं। या तो अुन्हें, जैसा वे होते हैं अुससे अच्छा करके दिखाया जा सकता है; या बुरा करके दिखाया जा सकता है; या ज्यों-का--त्यों दिखाया जा सकता है। चाहे नाटक यथार्थवादी हो या आदर्शवादी, पहले दो तरीके भद्दी रुचिके परिचायक हैं। यथार्थसे बुरा करके जो अनुकरण होगा अुसमें खून-खच्चर, शराब-कबाब, हत्या-डकैती आदिका प्राधान्य होगा। जो यथार्थसे अच्छा होगा अुसमें आकाशवाणी, देवत्वारोप, पुष्पवृष्टि आदिका प्राधान्य होगा।

वस्तुतः नाटकका अनुकरण वास्तविक होना चाहिये। केवल अुसका प्रभाव अैसा होना चाहिये जो मनुष्यको पशु-सुलभ मनोवृत्तियोंसे अूपर अुठावे। मनुष्य नाना प्रकारकी दुर्बलता और शक्तियोंका समन्वय है, अुसका अनुकरण भी वैसा ही होना चाहिये। कुछ लोगोंको यह भ्रम है कि पाश्चात्य देशोंमें जिसे 'ट्रेजेडी' कहते हैं वह दुःखान्त या वियोगान्त घटना है। असल बात यह नहीं है। 'ट्रेजेडी' दुःखान्त नाटक है, अिसमें संदेह नहीं, परन्तु यदि चरित-नायकमें अैसी स्वाभाविक दुर्बलता न हो, जो अुसके दुःखमय अन्तको स्वाभाविक रूपमें बढ़ा ले चले, तो वह चीज 'ट्रेजेडी' नहीं कही जायगी। यदि शुरूमें ही

मान लिया जाय कि चरित-नायक कभी भी सत्पथसे विचलित नहीं होनेवाला व्यक्ति है तो 'ट्रेजेडी'का रस-परिपाक अच्छा नहीं होगा, क्योंकि 'ट्रेजेडी'के समस्त दुःखोंका मूल अुस चरित-नायककी दुर्बलता ही है। अिसलिये नाटकीय चित्रणमें वास्तविकता आवश्यक है। अिन वास्तविकताओंके भीतरसे ही अुत्तम नाटककार महान् बनानेवाले नाटकीय प्रभावको पैदा करता है।

§९८. चरित्र-प्रधान नाटकोंके प्रसंगमें हिंदीके प्रसिद्ध नाटककार श्री जयशंकर 'प्रसाद'का नाम लिया जा सकता है। अुनके नाटकोंके प्रधान आकर्षण दो हैं:—(१) शक्तिशाली चरित्र और (२) कवित्वमय वातावरण। यद्यपि अुनके चारित्रोंमें अनेक श्रेणीके लोग नहीं हैं, तथापि वे अितने सजीव हैं कि पाठक अुनको भूल नहीं सकता। अुनके आदर्श पात्रोंमें वीरता, प्रेम और देशभक्ति आवश्यक रूपसे विद्यमान रहते हैं। अिसका परिणाम यह हुआ है कि अुनमें बहुविधता नहीं आ पाअी है।

अुनके सभी आदर्श और आकर्षक पुरुष-पात्रोंको तीन मोटे विभागोंमें बाँट लिया जा सकता है :—

(१) तत्त्वचिंतक (२) कर्मठ वीर सैनिक और (३) कुटिल राजनीतिज्ञ। ये सभी पात्र प्रेमी होते हैं और प्रेम ही अिनको दुर्बल या सबल बनाता है। अुनके स्त्री-पात्रोंमें भी ये ही बातें लागू होती हैं। अुन्हें भी तीन श्रेणियोंमें बाँट लिया जा सकता है: —(१) कुटिल राजनीतिज्ञाअें (२) प्रेमिकाअें और (३) दुर्बल हृदयकी महत्त्वाकांक्षिणी स्त्रियाँ।

अुनके सभी नाटकोंमें कुछ घटा-बढ़ाकर ये छः प्रकारके चरित्र खोजे जा सकते हैं। फिर भी 'प्रसाद'जीके पात्र अुस प्रकारके 'टािअप' नहीं हैं, जैसा कि पुराने साहित्यमें राजा, रानी, ब्राह्मण, मंत्री आदिके 'टािअप' बन

चुके थे। रानीको कैसा होना चाहिये, राजाको कैसा होना चाहिये, ये बातें पहलेसे ही तय हो गअी होती थीं। नाटककार अिन 'टाअिपों'को ही रसोद्रेक-का वाहन बनाता था। 'प्रसाद'जीके नाटक अुस प्रकारके 'टाअिप' नहीं हैं। परन्तु अुसकी समूची ग्रंथावली पढ़नेवाला पाठक यह ज़रूर अनुभव करेगा कि यद्यपि अुनके पात्र पुरानी रूढ़ियोंके अनुसार 'टिपिकल' तो नहीं हैं परन्तु अुनके अपने ही मनसे गढ़े हुअे 'टाअिप' अवश्य हैं।

'प्रसाद'जीके नाटकोंका दूसरा आकर्षण अुनका कवित्वमय वातावरण है। अुनके कअी चरित्र मनुष्य रूपमें प्रगीत मुक्तक हैं। देवसेना और कार्नेलिया अैसे ही मुक्तक काव्य हैं। अुनके जीवनमें अेक प्रकारका संगीत है, अेक विशेष 'छंद' है। परन्तु केवल चरित्र ही नहीं 'प्रसाद'जीके सारे नाटकोंका वातावरण ही कवित्वमय है। पात्रोंकी बातचीतमें, नाममें, हिलने-डुलनेमें, सर्वत्र कवित्वका सुर ही प्रबल है। अुन्होंने अपने युगके प्रधान प्रश्नोंसे मुँह नहीं मोड़ा है। अुनके नाटकोंमें राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिक झगड़े, स्त्रीका समानाधिकार, युद्धका विषमय परिणाम, साम्राज्यवाद, विदेशी शासन आदि सभी बातें आअी हैं। पर सब कुछपर कवित्वका अेक मोहक आवरण पड़ा हुआ है। अिस प्रकार 'प्रसाद' जी के नाटकोंको अुनके चरित्रों और कवित्वमय वातावरणने आकर्षक बना दिया है।

§९९. अूपर अिस देश-संकलन, काल-संकलन और वस्तु-संकलनकी चर्चा की गअी, अुसपर यहाँ विचार कर लिया जाय। बहुत प्राचीन कालसे यूनानके नाट्यशास्त्रियोंने वस्तु, काल और देश-संबंधी तीन बातोंके संकलनकी मर्यादा बाँध दी थी—अर्थात् किसी नाटकका पूरा अभिनय किसी अेक ही कृत्यसे सम्बद्ध होना चाहिये; चौबीस घंटेमें घटित घटनाका ही संक्षिप्त रूप होना चाहिये और किसी अेक-ही स्थानपर घटित घटनाका रूप होना चाहिये।

अिनको क्रमशः ' वस्तु-संकलन ', 'काल-संकलन', और ' देश-संकलन ' कहा जाता है। शेक्सपियरने अिन तीन संकलनोंको नहीं माना और आजकलके नाटककार भी अिन्हें ज्यों-का-त्यों नहीं मानते। यद्यपि अेक दिन, अेक स्थान और अेक कृत्यकी संकीर्ण मर्यादा मान्य नहीं हो सकती, क्योंकि अिससे नाटककार अनावश्यक बंधनोंसे जकड़ जाता है; पर अिन तीनों संकलनोंके अन्तर्निहित सत्यको भुलाया नहीं जा सकता। रंगमंचपर यदि अेक दृश्य आजका दिखाया गया हो और दूसरा दस वर्ष बादका तो सहृदय श्रोताके चित्तमें विकल्प अुत्पन्न होगा और अुसकी रसानुभूतिमें बाधा पड़ेगी। अिसी तरह दृश्य यदि दूर देशोंमें पटापट परिवर्तित होते जायँ तो भी सहृदयका चित्त विकल्पमें पड़ जायगा। अिसलिये नाटकके देश, काल और वस्तुमें यथासंभव कम अन्तर होना आवश्यक है। दीर्घकालका कौशल दिखानेके लिये नाटककारको कौशलसे काम लेना चाहिये। यदि बीच-बीचमें कुछ दूसरे दृश्यसे दर्शकको अिस प्रकार अुलझा दें कि दर्शक देशगत और कालगत व्यवधानोंको भूल जाय तो कालगत व्यवधान खटकता नहीं। कालिदासने शकुन्तलाके प्रत्याख्यान और पुनर्मिलनके बीच अितने अनेक दृश्योंकी अवतारणा की है कि काल और देश-विषयक व्यवधान दर्शकको याद ही नहीं रहता।

§१००. नाटक बहुत अधिक निःसंग रचना है। सारे नाटकमें कहीं भी यह मौक़ा नहीं रहता कि हम नाटककारके अपने जीवन या अपने विचारोंके विषयमें कुछ जान सकें। प्राचीन कालमें भारतीय नाटककारोंने अिस कठिनाअीपर विजय पानेके लिये नाटकके आरंभमें 'प्रस्तावना' रखनेकी प्रथा चलाअी थी। प्रस्तावनामें नाटकका सूत्रधार (व्यवस्थापक) अपनी पत्नी नटीसे बातचीत करता था और कविके नाम, धाम और यशका पता तो बताता ही था, नाटक किस अवसरपर खेलनेके लिये बनाया गया था और अुसमें किस प्रकारकी बात आनेवाली है, अिसकी सूचना भी बड़े कौशलसे

दे देता था ! नये युगमें यह प्रथा अुठ गयी है। छापेकी मशीनने अिस विषयमें दर्शककी सहायता की है। साधारणतः नाटककारका नाम और अभिनेताओंके नाम भी छापकर दर्शकोंतक पहुँचा दिये जाते हैं। पर अिस नवीन प्रयत्नमें न तो पुराना कौशल ही रह गया है, और न वह रसमय कवित्व ही, जो प्रस्तावनाको जीवन्त बना देते थे। फिर भी नाटक निस्संग रचना है, यह बात भुलाअी नहीं जा सकती। अिसलिये नाटकमें कविका क्या अुद्देश्य है, यह समझना कठिन रह ही जाता है।

§१०१. प्राचीन युगमें नाटक काव्यका ही अेक भेद माना जाता था। अिसलिये अुसमें काव्यतत्त्व प्रचुर मात्रामें पाया जाता था। अिधर पश्चिमके बर्नर्डशा आदि लेखकोंसे प्राप्त प्रेरणाने हमारे लेखकोंको अधिक गद्यात्मक और बुद्धिमूलक नाटक लिखनेको प्रवृत्त किया है। अिन नाटकोंमें सामाजिक रूढ़ियोंके पर्देके पीछे जो नग्न सत्य है अुसके तथा चिराचरित प्रथाके मूलमें निहित सत्यका विरोध दिखाया जाता है। विरोधी प्रायः तुल्यबल होते हैं और नाटकके अन्तमें दर्शक केवल समाजको विश्लेषण करनेकी बुद्धि और अनिश्चय लेकर अुठता है। अिन्हें 'समस्या नाटक' नाम दिया गया है।

व्यक्ति और समाजके संबंधमें सबसे प्रमुख और प्रधान है स्त्री और पुरुषका संबंध, जिसे बर्नर्डशाने अेक जगह 'अन्ध-जीवन-शक्ति' (ब्लाअिंड लाअिफ़-फोर्स) कहा है। अिस अंधशक्तिके साथ मनुष्यके परिमार्जित संस्कारोंका पदे-पदे विरोध है।

हिंदी 'समस्या' नाटककारोंमें सबसे अधिक प्रतिभाशाली लक्ष्मी-नारायण मिश्र हैं। अुन्होंने 'जो अनुभव किया हैं', अुसे 'नाटकके रूपमें' हमारे सामने रख दिया है, यथार्थ, ज्यों-का-त्यों। अुन्होंने जान-बूझकर मनोरंजनके लिये या धोखा देनेके लिये किसीको पापी, या पुण्यात्मा नहीं बनाया, बल्कि अपने

चरित्रोंको ज़िन्दगीकी सड़कपर लाकर छोड़ दिया है। वे अपनी प्रवृत्तियों और परिस्थितियोंके चक्करदार घेरेमें होकर रुकते हुअे, थमते हुअे, ठोकर खाते हुअे आगे बढ़ते गये हैं, और नाटककार बराबर एक सच्चे जिज्ञासुकी तरह बड़ी सावधानीसे चलता गया है। प्रेमचंदजीके चरित्रोंकी तरह अुनके मूलमें ही क्रांति नहीं है। क्रांति है अुनके अन्तमें। यह सच है कि अुन्होंने भी क्रांति की है, सामाजिक या राजनैतिक नियमोंकी अवहेलना की है; किन्तु कब?— विरोधी अुपकरण जब ज़िन्दगीकी राह रोककर खड़े हो जाते हैं। यही स्वाभाविक है। मिश्रजीकी यह अीमानदारी अुनके नाटकोंमें भारी आकर्षण ले आ देती है। अुन्होंने पुरानी भावुकताके प्रति विद्रोह किया है। अुनका कहना है कि "प्रतिभा यदि वास्तवमें कहीं है तो वह अुसी पुराने रास्तेमें धूलके भीतर घसीटी नहीं जा सकती। अुसकी अिच्छा कानून है, वह जिधर नज़र डालती है, नियम बनते जाते हैं। कलाकार वह कम्पास है जो तूफ़ानमें ठीक अुत्तरकी ओर अिशारा— संकेत— करता है।" अिस दृष्टिसे अिनके नाटकोंमें 'ठीक अुत्तरकी' ओर संकेत करना ही आदर्श है, फिर भी अुन्होंने अपने नाटकोंको जो 'समस्या नाटक' कहा है अुसका कारण यह है कि वे पहलेसे ही समाधानको दृष्टिमें रखकर अपनी रचना नहीं करते। वे अुस बातकी ओर अुन्मुख हैं, जो अेक नयी दुनियाका निर्माण करेगी, 'जिसका आधार संस्कार और सेवा होगा—रंगोंकी विषमता और घृणा नहीं।' अिसीलिये वे बर्नर्डशाकी अुस प्रवृत्तिका अनुकरण करना पसंद नहीं करते जिसका काम अुपहास करना है, सुधार करना नहीं।

मिश्रके नाटकोंमें नाटकीय कारीगरी निर्दोष नहीं कही जा सकती। दृश्योंके विधानमें और समस्याओंकी बेमेल योजनामें त्रुटि खोजी जा सकती है, पर निस्संदेह अुनमें अपने प्रतिपाद्यके भीतर प्रवेश करनेकी पैनी दृष्टि वर्तमान है।

§१०२. लेकिन हिंदीमें आज भी नाटकोंमें कवित्व पूरी मात्रामें है। तीन श्रेणीके नाटक अैसे लिखे गअे हैं जो काव्यके तत्त्वोंसे परिपूर्ण हैं :—

(१) प्रथम हैं 'रूपक नाट्य'—जिनमें या तो मानवीय मनोरागों—जैसेः—कामना, विलास, सन्तोष, करुणा आदि—को मनुष्य रूपमें कल्पना करके नाटकीय रस-सृष्टि करनेका प्रयास होता है, या प्रकृतिके भिन्न-भिन्न अुपादानोंकी मानव रूपमें अवतारणा की जाती है। प्रसादजीकी 'कामना' प्रथम श्रेणीमें और सुमित्रानंदन पंतजीकी 'ज्योत्स्ना' दूसरी श्रेणीमें आती है। अिन रूपकोंके माध्यमसे नाटककार अपना अभिमत अुद्देश्य व्यक्त करता है।

(२) 'गीति नाट्य' पद्यात्मक बातचीतके रूपमें लिखे जाते हैं। यह भी कवित्वकी मात्रा लिये होते हैं। कवित्वसे मतलब केवल पद्य-बद्धतासे नहीं बल्कि भावावेग, कल्पना और झंकारके वातावरणसे है। नाटकोंकी गद्यात्मक क्रियाका अिसमें प्राधान्य नहीं होता, यद्यपि वह नाटकीय गुण अिसमें रहना आवश्यक है, जो पात्रों और घटनाओंके घात-प्रतिघातसे गति अुत्पन्न करता है। हिंदीमें बहुत बड़ी प्रतिभावाला गीति नाट्यकार कोअी नहीं है।

(३) अिन्हींसे मिलते-जुलते अर्थात् भावावेग, कल्पना और झंकारका कवित्वमय वातावरण लिये हुये अेक और प्रकारके नाटक होते हैं, जो गद्यमें लिखे जाते हैं। अिन्हें 'भाव नाट्य' नाम दिया गया है। अैसे नाटकोंमें सबसे प्रख्यात है गोविन्द वल्लभ पन्तकी 'वरमाला'। श्री अुदयशंकर भट्टने भी अनेक गीतिनाट्यों और भावनाट्योंकी रचना की है।

§१०३. अिधर 'अेकांकी नाटकों'का भी प्रचलन बढ़ रहा है। पुराने ज़मानेमें भी अेक अंकमें भी समाप्त होनेवाले नाटक लिखे गअे हैं। परन्तु

अिधरके प्रयत्न नये हैं। अिनमें गद्यात्मकता, मनोविश्लेषणकी प्रवृत्ति और समस्याओंकी ओर संकेत ही प्रधान हो अुठा है। ये कहानीकी भाँति वैयक्तिक स्वाधीनता और गद्ययुगकी अुपज हैं। अिनमें बड़े नाटकोंकी भाँति चरित्रके विकासका ज़्यादा अवकाश नहीं होता। कहानीकी भाँति अेकांकी नाटकके चरित्र भी लेखकके अुद्देश्यके साधन होकर आते हैं। स्थान, समय और वस्तुका संकलन अेकांकीके कौशलकी जान हैं। कहानीकी भाँति अेकांकी नाटक भी अेक घटना, अेक परिस्थिति और अेक अुद्देश्यसे बनता है। हिंदीमें डा. रामकुमार वर्माने सबसे अधिक अेकांकी नाटक लिखे हैं।

§१०४. नाटककारका अुद्देश्य समझना अुपन्यासकारके अुद्देश्यके समान सरल नहीं है। नाटक भिन्न-भिन्न स्वभाववाले पात्रोंके मुखसे बोलता है। प्रत्येक पात्रकी अुक्तिमें नाटककारका अपना मत व्यक्त नहीं होता, परन्तु दो बातोंको ध्यानमें रखनेसे नाटककारका अपना अुद्देश्य समझमें आ जाता है। प्रथम यह लक्ष्य करना चाहिये कि नाटककार किस पात्रकी ओर सबसे अधिक सहानुभूति अुत्पन्न कर रहा है और किस पात्रकी ओर घृणा या अुपेक्षाका भाव दिखा रहा है। सहानुभूतिवाले पात्रके मुखसे नाटककार प्रायः अपना मत प्रकट किया करता है।

आजकल तो नाटककार दीर्घ भूमिकाअें लिखकर अपना मत प्रकट करने लगे हैं। नाटककारकी गलतियोंसे भी अुसके पक्षपातका अनुमान होता है, क्योंकि कभी-कभी अुत्तम नाटककारोंको भी अपने सिद्धान्तोंके प्रति अतिरिक्त मोह होनेके कारण शिथिल और अनावश्यक दृश्योंका अवतरण करते देखा गया है। 'प्रसादजी' प्रायः नाटकोंको गतिमान बनानेके बदले अपने अैतिहासिक मतों और दार्शनिक विश्वासोंको व्यक्त करनेके फेरमें पड़ जाते हैं। और अिस प्रकार गतिहीन दृश्योंकी योजना कर बैठते हैं।

परन्तु नाटककी परिसमाप्तिसे भी नाटककारका अुद्देश्य स्पष्ट होता है। 'शकुन्तला नाटक'के प्रथम अंकमें कालिदासने दुष्यन्त और शकुन्तलाके आकर्षणकी योजना यौवन-लीलाके भीतरसे की है। परिस्थितियाँ अिस अुच्छृंखल प्रेमाकर्षणको छिन्न-भिन्न कर देती हैं। अन्तिम अंकमें मलिन धूसरवसना, नियमाचरणसे शुष्कमुखी, शुद्धशीला शकुन्तलाका दर्शन होता है। यहाँ कविने मिलनका माध्यम बालकको बनाया है। अिस आदि और अन्तको देखकर सहृदयके हृदयपर यह प्रभाव पड़ता है कि "मोहमें जो अकृतार्थ हुआ है वह मंगलमें परिसमाप्त है। धर्ममें जो सौंदर्य है वही ध्रुव है और प्रेमका जो शान्त, सयंत तथा कल्याणमय रूप है वही श्रेष्ठ है; बंधनमें ही यथार्थ शोभा है; और अुच्छृंखलतामें सौंदर्यकी आशु विकृति। भारतवर्षके प्राचीन कविने प्रेमको ही प्रेमका लक्ष्य नहीं माना, मंगलको ही प्रेमका अन्तिम लक्ष्य घोषित किया है। अुनके मतमें नर-नारीका प्रेम तबतक सुंदर नहीं होता जबतक कि वह बन्ध्य (निष्फल, निस्सन्तान) रहता है, कल्याणको नहीं अपनाता और संसारमें पुत्र, कन्या तथा अतिथि-प्रतिवेशियोंमें विचित्र सौभाग्यसे व्याप्त नहीं हो जाता।" (रवीन्द्रनाथ)

§१०५. और सही बात यह है कि अन्यान्य साहित्यांगोंकी भाँति नाटकका भी चरम लक्ष्य वही परम मंगलमय अैक्यानुभूति है जिससे वह पशु-सामान्य प्रवृत्तियोंसे अूपर अुठता है और प्राणिमात्रके सुख-दुःखको अपना समझ सकता है। नाटककी आलोचनाके नामपर आजकल बहुत अूल-जुलूल भ्रामक बातें फैलाअी जा रही हैं। सुप्रसिद्ध नाटककार बर्नडशाने अेक जगह लिखा है :—

" कोअी अैसी बात नहीं कहता कि 'मैं पूर्वकालीन सुखान्त और दुःखान्त नाटकोंसे अुसी प्रकार घृणा करता हूँ जिस प्रकार धर्मोपदेशसे या

संगीतसे। किन्तु मैं पुलिस-केस या विवाह-विच्छेदके समाचारको या किसी भी प्रकारके नृत्य और सजावट आदिको पसंद करता हूँ, जो मुझपर और मेरी पत्नीपर अच्छा प्रभाव डालते हैं। बड़े लोग चाहे जो कहें मैं किसी प्रकारके बुद्धिमूलक कार्यसे आनंद नहीं अुठा पाता और न यही विश्वास करता हूँ कि कोअी दूसरा ही अुससे आनंद अुठा सकता होगा'। —अैसी बातें नहीं कही जाती। फिर भी योरुप और अमेरिकाके ९० फी सदी प्रसिद्ध पत्रोंमें नाटकोंकी समालोचनाके नामपर अिन्हीं बातोंका विस्तृत और पालिश किया हुआ अर्थान्तर प्रकाशित होता है। अगर अिन समालोचनाओंका यह अर्थ नहीं तो अुनका कुछ भी अर्थ नहीं है।''

---

८. साहित्यिक समालोचना और निबंध

§१०६. 'समालोचना' शब्दका व्यवहार आजकल बहुत अस्त-व्यस्त अर्थमें हो रहा है। अंग्रेजीके 'क्रिटिसिज्म', 'रिव्यू', 'ओपिनियन' आदि शब्दोंके सिवा संस्कृतके 'टीका-व्याख्या' आदि सभी अर्थोंमें अिसका व्यवहार होते देखा गया है। साधारणतः समालोचकका कर्तव्य यह समझा जाता रहा है कि वह कवि और काव्यके दोष-गुणोंकी परीक्षा करे, अुत्कर्ष-अपकर्षका निर्णय बतावे, और अुपादेयता या अनुपादेयताके संबंधमें परामर्श दे। सनातन कालसे समस्त देशोंमें काव्य-समालोचक निम्नलिखित बातोंमेंसे अेक, दो या तीनोंका कार्य करते आये हैं—विश्लेषण, व्याख्या और अुत्कर्षापकर्ष-विधान। लेकिन बहुत हाल ही में समालोचकके अिस सनातन-समर्थित कर्तव्यको सन्देह की दृष्टिसे देखा जाने लगा है।

सबसे पहला आक्रमण 'समालोचना' नामक विषयपर ही किया गया है। कवि और पाठकके बीच अिस मध्यवर्ती बाधाकी अुपकारितापर ही सन्देह प्रकट किया गया है। विभिन्न देश और कालके अितिहाससे अिस प्रकारके सैकड़ों प्रमाण अेकत्रित किये जा सके हैं कि अेक ही कवि या नाटक-कारको दो समालोचक अेकदम विरुद्ध रूपमें देखते हैं। फ्रांसके आलोचक बहुत दिनोंतक शेक्सपियरको असभ्य, जंगली और कला-शून्य समझते रहे और अिंगलैण्डवाले संसारका सर्वश्रेष्ठ कलाकार ! मिल्टनके 'पैराडाअिज़ लास्ट' को अेक पंडितने बहुत ही अुत्तम और दूसरेने अत्यन्त निकृष्ट कोटिका काव्य बताया था। हिंदीमें अुस दिनतक देव और बिहारीके काव्योत्कर्षके विषयमें

परस्पर विरोधी मतोंका चख-चख चलता रहा। केवल कवियोंकी ही नहीं आलोचकोंकी भी समीक्षा करते समय परस्पर विरोधी मतोंकी बातें सुनाअी देती हैं। श्री रामनाथ लाल 'सुमन'को जिस महीने श्री नगेंद्रने 'अिमेजिने-टिव' या कल्पनावादी 'स्कूल'का बताया, अुसी महीने श्री बनमालीने 'अिम्प्रेशनिष्ट' या प्रभाववादी सम्प्रदायका मान लिया! अिस प्रकार प्रत्येक देश और प्रत्येक कालमें समालोचकके विश्लेषण, व्याख्या और अुत्कर्षापकर्ष विधानोंमें गहरा मतभेद देखा जाता है। फिर भी अिसके बिना काम भी नहीं चलता।

§१०७. समस्त हिंदी-साहित्यको पढ़ना संभव नहीं है। अुसपर अपना मत भी स्थिर करना सबके बूतेका नहीं है। अिस अज्ञानकी अपेक्षा पं. रामचंद्र शुक्लका विशेष दृष्टिसे देखा हुआ साहित्यिक निष्कर्ष पढ़ना कहीं अधिक अच्छा है। अिस प्रकार पं. रामचंद्र शुक्लका मत अेक-दो स्थानोंपर भ्रामक होते हुअे भी, सब मिलाकर कामकी चीज़ सिद्ध हो सकता है; पर ख़तरा यह है कि पं. रामचंद्रको 'क', 'ख', 'ग' नामक समालोचकोंसे विशेष कैसे मान लें? कौन-सा बाँट है जिससे हम शुक्लजीके भारीपन और दूसरोंके हल्केपनका निर्णय कर लें? स्पष्ट ही हमें फिर अेक दूसरे आदमीकी राय लेनी पड़ेगी और अिस प्रकार मूल पुस्तक और अपने बीच हम अेक और बाधा खड़ी कर लेंगे। सच पूछा जाय तो मूल पुस्तक और पाठकोंके बीच अिस प्रकारकी बाधाओंकी परंपरा बड़ी ख़तरनाक साबित हुअी है। अिस वैज्ञानिक युगमें अिसीलिये अिन अुत्कर्षापकर्ष-विधायिनी समालोच-नाओंके प्रति अेक तरहके विरागका वातावरण तैयार हुआ है! अिसलिये कुछ पंडितोंने समालोचनाको बिल्कुल नये ढंगका शास्त्र बनाना चाहा है; क्योंकि अुसके बिना जब काम चल ही नहीं सकता और पुराना ढंग जब ख़तरनाक

साबित हो ही चुका है, तो क्यों न अिस शास्त्रका आमूल संस्कार कर लिया जाय ?

§१०८. अिन नये पंडितोंका मत है कि समालोचनामें अुत्कर्ष या अपकर्षका निर्णय नहीं होना चाहिये। वनस्पति-शास्त्री बबूल और गुलाबके सौन्दर्य या गुणोंकी मात्राका विचार नहीं करता, वह केवल अिनकी जातिका भेद बताता है। अिसी प्रकार आलोचकको भी आलोच्य ग्रंथकारकी जातिका निर्णय करना चाहिये, गुण और दोषकी मात्राका नहीं।

प्राचीन निर्णयात्मिका समालोचना (जुडिशियल)के विरोधमें अिसका नाम दिया गया है 'अभ्यूहमूला समालोचना' या (अिंडक्टिव क्रिटिसिज्म)। अिसमें कवियोंके प्रकार- (काअिंड)-में भेद किया जाता है, मात्रा(डिग्री) में नहीं। समालोचक काव्यका विश्लेषण करते हैं, गुण-दोषका विवेचन नहीं। लेकिन वनस्पति-शास्त्रके बबूल और गुलाबका जाति-भेद बतानेके बाद भी अेक अैसे शास्त्रकी आवश्यकता रह जाती है जो बतावे कि अिन दोनोंमेंसे किसका नियोग मानव-जातिके किस कल्याणमें किया जा सकता है। अुसी प्रकार अिस समालोचकके बाद भी अिस बातकी ज़रूरत रह जाती है कि, समालोचक नहीं तो कोअी और ही बतावे कि, अिस कविसे समाजको क्या लाभ या हानि है— अर्थात् समाजके लिये कौन कितना अुत्कृष्ट या अपकृष्ट है ? अिस प्रकार समस्या जहाँकी तहाँ रह जाती है। असलमें सवाल 'जुडिशियल' या 'अिन्डक्टिव' आलोचनाका नहीं है, सवाल है अेक सामान्य निर्णायक साधनका। भारतवर्षके पंडितोंने अनेक रगड़-झगड़के बाद अेक सामान्य मान (या 'कामन स्टैण्डर्ड') बनानेकी चेष्टा की थी; पर हमने देखा है कि ज़मानेके परिवर्तनके साथ वह अब आदर्श व्यवस्था नहीं मानी जा सकती। फिर भी अुनके सुझाये हुअे मार्गसे नये 'स्टैण्डर्ड'का अुद्भावन किया जा सकता है।

§१०९. मनुष्यका मन हजारों अनुकूल और प्रतिकूल धाराओंके संघर्षसे रूप ग्रहण करता है, अुसे अगर प्रमाण मान लें तो मूल्य-निर्धारणका कोअी अेक सामान्य मानदण्ड बन ही नहीं सकता। ग्राहक और विक्रेताको अपने-अपने मनके अनुसार 'सेर' बनाने दिया जाय तो बाजार बंद हो जायेंगे। कविका कार-बार अिसी मानसिक 'सेर'से चलता है, अन्ततः अबतक चलता रहा है! अिधर समालोचक लोग अपने-अपने मनके गढ़े 'सेर' लेकर पहुँचे हैं। जब हम समालोचककी रुचिकी बात कहते हैं तो अुसके किसी मन-गढ़न्त 'सेर'की बात करते हैं। 'क' नामक समालोचक जिसको तीन सेर कहता है, 'ख' अुसे पौन सेर माननेको भी तैयार नहीं। 'देव पुरस्कार'के अेक निर्णायकने अेक पुस्तकपर ८५ नंबर दिये थे, दूसरेने २० और तीसरेने शून्य!! अब, यह तय है कि अपनी-अपनी रुचि और अपने-अपने संस्कार लेकर वस्तुका याथार्थ्य-निर्णय नहीं हो सकता, कोअी अेक सामान्य मानदण्ड होना चाहिये।

प्रभाववादी समालोचकोंने अिस सामान्य मानदण्डके रास्तेमें विघ्न खड़ा किया है। पं. रामचंद्र शुक्लने अिनकी समालोचनाके संबंधमें अपने अितिहासमें कहा है कि—"प्रभावाभिव्यंजक समालोचना कोअी ठीक-ठिकानेकी वस्तु ही नहीं। न ज्ञानके क्षेत्रमें अुसका कोअी मूल्य है न भावके क्षेत्रमें। अुसे समीक्षा या आलोचना कहना ही व्यर्थ है। किसी कविकी आलोचना कोअी अिसलिये पढ़ने बैठता है कि अुस कविके लक्ष्यको, अुसके भावको ठीक-ठीक हृदयंगम करनेमें सहारा मिले; अिसलिये नहीं कि सजीले पद-विन्यास द्वारा अपना मनोरंजन करे। यदि किसी रमणीय अर्थ-गर्भित पद्यकी आलोचना अिसी रूपमें मिले कि 'अेक बार अिस कविताके प्रवाहमें पड़कर बहना ही पड़ता है। स्वयं कविको भी विवशताके साथ बहना पड़ा

है; वह अेकाधिक बार मयूरकी भाँति अपने सौंदर्यपर आप ही नाच अुठा है', तो अुसे लेकर कोअी क्या करेगा ? ''

आचार्य शुक्लका यह वक्तव्य जहाँ विशुद्ध बुद्धिमूलक चिन्तनको प्रधान मानकर समालोचनाके प्रभाववादी रूपकी अुचित समीक्षा करता है, वहाँ यह भुला देता है कि काव्यकी समीक्षा कितनी भी बुद्धिमूलक क्यों न हो, है वह भावावेगको समझनेका प्रयत्न। सहृदयके हृदयमें वासना रूपमें स्थित भाव ही तो काव्यके अलौकिक चमत्कारका कारण है, रस सहृदयके स्वाकारसे अभिन्न है [दे० §२९]। फिर वह निस्संग कैसे हो सकता है ? जबतक सहृदयका व्यक्तित्व कविके साथ अेकाकार नहीं हो जाता तबतक रसका अनुभव नहीं हो सकता। समीक्षक जबतक अपना अहंकार लेकर बैठा रहेगा तबतक रस नहीं पा सकेगा। स्वयं शुक्लजीने कहा है कि 'काव्यका जो चरम लक्ष्य सर्वभूतको आत्मभूत कराके अनुभव कराता है, अुसके साधनमें भी अहंकारका त्याग आवश्यक है।'

§११०. लेकिन किसी भी बातके निर्णयका सामान्य मानदण्ड मनुष्यके पास वर्तमान है। वह मानदण्ड है बुद्धि। किसी 'वस्तु', 'धर्म' या 'क्रिया' के वास्तविक रहस्यका पता लगानेके लिये अुसे अपने अनुराग-विराग या अिच्छा-द्वेषके साथ सान नहीं देना चाहिये, बल्कि देखना चाहिये कि वह वस्तु-धर्म या क्रिया, देखनेवालेके बिना भी, अपने-आपमें क्या है। गीतामें अिसी बातको नाना भावसे बताया गया है। समालोचनाका जो ढर्रा प्रभाववादियोंने चला दिया है अुसमें द्वंद्वों द्वारा परिचालित होनेको दोषका कारण तो माना ही नहीं जाता, अुलटे कभी-कभी अुसके लिये गर्व किया जाता है।

§१११. सम्मतियोंकी अिस बहुमुखी विरोधिताका कारण यह है कि आलोच्य-वस्तुको आलोचक अपने मानसिक संस्कारोंके भीतरसे देखता है। कभी-कभी वह अपनी ग़लती खुद ही महसूस करता है और अिसलिये अपनी सम्मतिके समर्थनमें वेदान्तसे लेकर काम-शास्त्रतकका हवाला पेश किया करता है। अिस प्रकार शुरूमें ही अपनी रुचि-अरुचिके जालसे आलोच्यको आच्छादित करनेवाली समालोचनाका भी नाम कभी-कभी 'निर्णयात्मिका' ('जुडिशियल') बताया जाता है। परन्तु वस्तुतः यह समालोचना 'निर्णयात्मिका' नहीं होगी, क्योंकि निर्णायक होनेके लिये अिच्छा-द्वेषसे परे होना बहुत ज़रूरी है। परन्तु कहा जाता है कि समालोचनाकी दुनिया निराली होती है। अन्य वैज्ञानिक ठोस-ठोस वस्तुओंकी नाप-जोख करते रहते हैं, पर समालोचक अनिंद्रिय-ग्राह्य अलौकिक रस-वस्तुकी जाँच करता है। अिसलिये पहले अुसे अपने मनोभावोंको ही प्रधानता देनी चाहिये। अर्थात् छूटते ही अुसे जो काव्यादि 'अपील' कर जायँ, अुसीको अुसे बुद्धि-परक विवेचनाका रूप देना चाहिये। परन्तु अैसा करके आलोचक वस्तुतः कवि बनता है। अन्तर यही होता है कि कवि फूल-पत्तेको देखकर भावोन्मत्त होता है, और आलोचक अुसकी कविताको, दोनों कब क्या. कह जायँ, कुछ ठीक नहीं!

अैसा स्वीकार करनेमें किसीको कोअी आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि कविके चित्तके अन्तस्तलमें या अुसके मनके अवचेतन स्तरमें अैसी बहुत-सी चीज़ें होती हैं जो अनजानमें अुसकी कवितामें आ जाती हैं और आलोचकका दावा बिलकुल ठीक है कि वह अुन अनजान प्रवृत्तियोंसे पाठककी परिचय कराता है। परन्तु जब वह कहता है कि अुससे अुसे किसी अनिर्वचनीय हेतु या कलाका संधान मिलता है, तो मुझे अैसा लगता है कि

वह मानव बुद्धिपर जितना विश्वास करना चाहिये अुतना नहीं करता। कोअी चीज़ हमें सौ-दो-सौ कारणोंसे प्रभावित करती है। आज मनुष्यकी बुद्धि शायद अुनमेंसे दस-पाँचका ही ज्ञान रखती है। बाकी अज्ञात हैं। किन्तु वैज्ञानिकका यह धर्म है कि अुसे जितना मालूम है अुतना कहकर बाक़ीके लिये भावी पीढ़ियोंमें कुतूहल और अुत्सुकताका भाव जगा जाय। यह नहीं कि कह दे कि बाक़ी किसी अज्ञात या अज्ञेय अुत्ससे आ रहे हैं। यही कारण है कि आजका समालोचक पुराने समालोचकोंके रास्तेसे हटता जा रहा है।

पुराना समालोचक आलोच्य काव्य और कविताको अपने-आपमें संपूर्ण मान लेता था, नया समालोचक अैसा मानना नहीं चाहता; क्योंकि अैसा मान लेनेसे काव्यादि साहित्यांग मानवताके साध्य हो जाते हैं, मानवताकी अग्रगतिमें साधनका कार्य करते हुअे नहीं माने जाते। और अगर साध्यरूपसे ही साहित्यको पढ़ना हो तो प्राचीन हिंदीके अधिकांश साहित्यको याद रखनेकी कोअी ज़रूरत नहीं। आधुनिक समालोचककी दृष्टि अपने सामनेकी समस्याओंपर रहती है। साहित्य अुसके समझनेमें और सुलझानेमें अुसके लिये सहायकका काम करता है। कवि अुसके लक्ष्य नहीं, अुपलक्ष्य होते हैं।

लेकिन समालोचना केवल साहित्यिक ग्रंथतक ही सीमित नहीं रहती। संसारके विविध पदार्थोंको मनुष्यकी बुद्धिसे समझनेका प्रयत्न करती है। यह प्रयत्न जब केवल सूक्ष्म तर्क और बौद्धिक विलाससे आगे बढ़कर मनुष्यकी भावनाओं और अनुभूतियोंको आश्रय करके प्रकट होता है तो अुसमें साहित्यिकता आ जाती है। साहित्यिक कृतियोंकी आलोचनामें भी हमने अिस प्रकारका भाव-मिश्रण लक्ष्य किया है। प्रायः कविताको देखकर

भाव-मंदिर भाषामें प्रकट किये गये अुद्‌गार देखनेको मिलते रहते हैं। वस्तुतः अिनको 'साहित्यिक समालोचना' न कहकर समालोचनाके रूपमें 'व्यक्तिगत निबंध' कहना अुचित है।

§११२. 'निबंध' क्या है? प्राचीन संस्कृत साहित्यमें 'निबंध' नामका अेक अलग साहित्यांग है। अिन निबंधोंमें धर्मशास्त्रीय सिद्धांतोंकी विवेचना है। विवेचनाका ढंग यह है कि पहले पूर्वपक्षमें अैसे बहुत-से प्रमाण अुपस्थित किये जाते हैं जो लेखकके अभिष्ट सिद्धान्तके प्रतिकूल पड़ते हैं। अिस पूर्वपक्षवाली शंकाओंका अेक-अेक करके अुत्तरपक्षमें जवाब दिया जाता है। सभी शंकाओंका समाधान हो जानेके बाद अुत्तरपक्षके सिद्धान्तकी पुष्टिमें कुछ और प्रमाण अुपस्थित किये जाते हैं। चूँकि अिन ग्रंथोंमें प्रमाणोंका निबंधन होता है अिसलिये अिन्हें 'निबंध' कहते हैं।

अिस शंका-समाधान-मूलक पक्ष-स्थापनमें लेखककी रुचि-अरुचिका प्रश्न नहीं अुठता। वह प्रमाणों और अुनके पक्ष या विपक्षमें अुठ सकनेवाले तर्कोंसे बँधा होता है। अिसलिये अिन निबंधोंमें बौद्धिक निस्संगता ही प्रधान रूपसे वर्तमान रहती है।

§११३. निस्संग बुद्धिसे विचार करनेका आदर्श रूप यह है कि यह दिखाया जाय कि कोअी वस्तु द्रष्टा बिना भी कैसी है। प्रत्येक वस्तु द्रष्टाकी रुचि-अरुचिसे सनकर थोड़ा भिन्न हो जाती है। अेक सुन्दर फूल अिसलिये सुन्दर लगता है कि वह द्रष्टाको सामंजस्यकी ओर अुन्मुख करता है। वैज्ञानिक विवेचनासे यह सिद्ध हो सकता है कि फूल और कोयला दोनों ही वस्तुतः अेक ही वस्तु हैं, क्योंकि दोनों ही कुछ विद्‌युदणुओंके, जिन्हें 'अिलेक्ट्रन' और 'प्रोटन' कहते हैं, समवाय हैं। यह निस्संग बुद्धिका विषय

है और अुसका रास्ता विश्लेषण और सामान्यीकरणका है। किन्तु जब कोअी द्रष्टा वस्तुको अपनी रुचि-अरुचिके भीतरसे देखता है तो वस्तुतः वह संश्लिष्ट और विशिष्ट वस्तुको देखता है। वह यह नहीं देखता कि फूल किन-किन अुपादानोंसे बना है, बल्कि यह देखता है कि फूल बन-बना लेनेके बाद कैसा है? और संसारकी और सौ-पचास वस्तुओंसे क्या वैशिष्ट्य रखता है?

निस्संग बुद्धि वैज्ञानिक विवेचनका सहारा है और आसक्त चित्त सौंदर्य-मर्मज्ञका। संसारके विविध पदार्थोंको दोनों दृष्टिसे देखा जाता है। साहित्यमें दूसरा मार्ग स्वीकार किया गया है, अिसलिये अुन्हीं निबंधोंका अिस प्रसंगमें विवेचन होगा जो संश्लिष्ट और विशिष्ट रूपमें वस्तुओंको देखते हैं।

§ ११४. हमने पहले ही लक्ष्य कर लिया है कि साहित्यिक समालोचनाके सिवा और भी बहुत-से अैसे निबंध हैं जो साहित्यके अन्दर माने जा सकते हैं। निबंधका प्रचलन भी कोअी नया नहीं है। पुराने ज़मानेसे ही निबंधोंका प्रचार है। हमने यह भी देखा है कि किसी प्रतिपाद्य सिद्धान्तके विरुद्ध जितने प्रमाण हो सकते थे, अुनको अेक-अेक करके अुठाना और अुनकी समीक्षा करते हुअे अपने सिद्धान्तपर पहुँचना, यही पुराने निबंधोंका कार्य था। परन्तु नये युगमें जिन नवीन ढंगके निबंधोंका प्रचलन हुआ है वे 'तर्कमूलक'की अपेक्षा 'व्यक्तिगत' अधिक हैं। ये व्यक्तिकी स्वाधीन चिन्ताकी अुपज हैं। जो निबंध किसी तत्त्ववादके विचारके लिये लिखे जाते हैं अुनमें थोड़ा-बहुत प्राचीन ढंग अब भी पाया जाता है। साधारणतः जिन निबंधोंमें निस्संग विचारका प्राधान्य होता है वे साहित्यिक आलोचनाके प्रसंगमें आलोचित नहीं होते।

§११५. निबंधोंकी नाना कोटियाँ हैं। अुनको साधारणतः पाँच श्रेणियोंमें बाँट लिया जा सकता है— (१) वार्तालाप-मूलक, (२) व्याख्यान-

मूलक, (३) अनियंत्रित गप्प-मूलक, (४) स्वगत-चिन्तन-मूलक, (५) कलह-मूलक।

(१) 'वार्तालाप-मूलक' निबंधका लेखक मन-ही-मन अेक अैसे वातावरणकी कल्पना करता है, जिसमें कुछ सच्चे जिज्ञासु लोग किसी तत्त्वका निर्णय करने बैठे हों और अपने-अपने विचार सत्य-निर्णयकी आशासे सहजभावसे प्रकट करते जाते हों। (२) परन्तु 'व्याख्यान-मूलक' निबंध-लेखक व्याख्यान देता रहता है। वह अपनी युक्तियों और तर्कोंको बिना अिस बातकी परवा किअे अुपस्थित करता जाता है कि कोअी अुसे टोक देगा। (३) 'अनियंत्रित गप्प' मारते समय गप्प करनेवाला हल्के मनसे बातें करता है, वह अपने विषयके अुन सरस और हास्योद्रेचक पहलुओंपर बराबर घूम-फिरकर आता रहता है, जो अुसके श्रोताके चित्तको प्रफुल्ल कर देंगे। (४) 'स्वगत-चिन्तन-मूलक' लेखक अपने-आपसे ही बात करता रहता है। अुसके मनमें जो युक्तियाँ अुठती रहती हैं, अुन्हें तन्मय होकर वह विचारता जाता है। पर-पक्षकी आशंका अुसे नहीं रहती। (५) परन्तु 'कलह-मूलक' निबंधका लेखक अपने सामने मानो अेक प्रतिपक्षीको रखकर अुससे अुत्तेजनपूर्ण बहस करता रहता है, प्रतिपक्षीकी युक्तियोंका निरास करना अुसका अुतना लक्ष्य नहीं होता जितना अपने मतको अुत्तेजित होकर व्यक्त करना। अिस अन्तिम श्रेणीके निबंधोंमें कभी-कभी अच्छी साहित्यिक रचना मिल जाती है, पर साधारणतः ये 'साहित्य' की श्रेणीके बाहर जा पड़ते हैं।

निबंधोंके व्यक्तिगत होनेका अर्थ यह नहीं है कि अुनमें विचार-शृंखला न हो। अैसा होनेसे तो वे 'प्रलाप' कहे जायँगे। संसारमें हम जो कुछ देखते हैं वह द्रष्टाकी विभिन्नताके कारण नाना भावसे प्रकट होता है।

अपनी रुचि और संस्कारके कारण किसी द्रष्टाका ध्यान वस्तुके अेक पहलूपर जाता है तो दूसरे द्रष्टाका दूसरे पहलूपर। फिर वस्तुओंके जो पारस्परिक संबंध हैं वे अितने तरहके हैं कि अिन संबंधोंमेंसे सब सबकी दृष्टिमें नहीं पड़ते। अिसीलिये प्रत्येक व्यक्ति यदि अीमानदारीसे अपने विचारोंको व्यक्त कर ले तो हमें नवीनका परिचय-मूलक आनंद मिल सकता है और साथ ही अुस अुद्देश्यकी सिद्धि भी हो सकती है, जो साहित्यका चरम प्रतिपाद्य है।

द्रष्टाके भेदसे दृश्यका अभिनव रूप हमें दूसरेके हृदयमें प्रवेश करनेकी क्षमता देता है और हम केवल अपने व्यक्तिगत रुचि-अरुचिके संकीर्ण दायरेसे निकलकर दूसरोंकी अनुभूतियोंके प्रति संवेदनशील होते हैं। वस्तुतः जो निबंध अिस अुद्देश्यकी ओर अुन्मुख करे वही साहित्यिक निबंध कहे जानेका अधिकारी है। जो लेख हमारे हृदयकी अनुभूतियोंको व्यापक, और संवेदनाओंको तीक्ष्ण नहीं बनाता, वह अपने अुद्देश्यसे च्युत हो जाता है।

§११६. अिस व्यक्तिगत अनुभूतिके कारण ही साहित्यिक निबंध-लेखक निःसंग तत्त्वचिन्तकसे भिन्न हो जाता है। "तत्त्वचिन्तक या वैज्ञानिकसे निबंध-लेखककी भिन्नता अिस बातमें भी है कि निबंध-लेखक जिधर चलता है अुधर संपूर्ण मानसिक सत्ताके साथ—अर्थात् बुद्धि और भावात्मक हृदय दोनों लिये हुअे। जो करुण प्रकृतिके हैं अुनका मन किसी बातको लेकर, अर्थ-संबंध-सूत्र पकड़े हुअे, करुणस्थलोंकी ओर झुकता और गंभीर वेदनाका अनुभव करता चलता है; जो विनोदशील हैं अुनकी दृष्टि अुसी बातको लेकर अुसके अैसे पक्षोंकी ओर दौड़ती है, जिन्हें सामने पाकर कोअी हँसे बिना नहीं रह सकता। पर सब अवस्थाओंमें कोअी अेक बात अवश्य चाहिये। अिस अर्थगत विशेषताके आधारपर ही भाषा और अभिव्यंजना-प्रणालीकी

विशेषता—शैलीकी विशेषता—खड़ी हो सकती है। जहाँ नाना अर्थ-संबंधोंका वैचित्र्य नहीं, जहाँ गतिशील अर्थकी परंपरा नहीं, वहाँ अेक ही स्थानपर खड़ी-खड़ी तरह-तरहकी मुद्रा और अुछल-कूद दिखाती हुअी भाषा केवल तमाशा करती हुअी जान पड़ेगी।" —(रामचंद्र शुक्ल)।

§११७. चूँकि व्यक्तिगत रुचि और संस्कार अनन्त प्रकारके हैं और भिन्न वस्तुके अर्थ-संबंध भी, जो अिन रुचियों और संस्कारोंको प्रभावित करते हैं, अनन्त प्रकारके हैं, अिसलिये व्यक्तिगत अनुभूति-मूलक निबंधोंकी केवल मोटी-मोटी श्रेणियाँ ही बताअी जा सकती हैं। अिस क्षेत्रमें अनुकरण नहीं चल सकता, क्योंकि कोअी भी दो व्यक्ति हू-ब-हू अेक ही रुचि और अेक ही संस्कारके नहीं होते। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न भाषाओंमें अैसे-अैसे निबंध-लेखक हैं जिनकी समानता दूसरी भाषाओंमें खोजी नहीं जा सकती। ये आधुनिक युगके अत्यन्त सजीव साहित्यांग हैं। अुनमें नित्य नवीन तत्त्वोंका समावेश और परिहार होता जा रहा है। निबंध-लेखक भी वस्तुतः अेक समालोचक ही है। अुसकी समालोचना पुस्तकोंकी नहीं होती, बल्कि अुन वस्तुओंकी होती है जो पुस्तकोंका विषय है।

§११८. संक्षेपमें हम अिस प्रकार कह सकते हैं कि वस्तुको चाहे वह साहित्यिक ग्रंथ हो या अन्य पदार्थ—देखनेको दो रास्ते हैं:— 'निर्वैयक्तिक' या अनासक्त रूपमें और 'वैयक्तिक' या आसक्त रूपमें। दूसरा रास्ता अनुभव करनेका है, पर अुसे प्रथमसे विच्छिन्न कर देनेपर दूसरोंतक अुसे नहीं पहुँचाया जा सकता। विश्लेषण और सामान्यीकरणका रास्ता वैज्ञानिक रास्ता है। तत्त्व-निर्णयके लिये हमें अिस रास्तेको अपनाना ही पड़ेगा। परन्तु साहित्य केवल तत्त्व-निर्णयसे ही सन्तुष्ट नहीं होता, वह कुछ नया निर्माण भी करना चाहता है। कोअी भी व्यक्ति केवल

भावावेगोंका गद्दर नहीं होता, वह वस्तुको देखते समय यथाशक्य निस्संग बुद्धिसे अुसका याथार्थ्य भी निर्णय करता है। भिसालिये वैयक्तिक या आसक्तभावसे देखना वैज्ञानिकके देखनेकी क्रियाका विरोधी नहीं है, बलिक अुसीका भावावेगोंसे सना हुआ कार्य है।

§११९. भिस प्रकार विश्लेषणके द्वारा समालोचक आलोच्य वस्तुके अुपादानोंको समझ सकता है, पर विश्लेषण चाहे जितना भी अुत्तम हो अुससे वस्तुका समग्र सत्य नहीं प्रगट होता। हमें साहित्यकी अुपादेयताकी परीक्षाके लिये अपने पूर्ववर्ती सिद्धान्तपर दृढ़ रहना चाहिये। जो साहित्य हमारी क्षुद्र संकीर्णताओंसे हमें अूपर अुठा ले जाय और सामान्य मनुष्यताके साथ अेक कराके अनुभव करावे वही अुपादेय है। अुसके भाव-पक्षके लिये किसी देश-विशेष या कालविशेषकी नैतिक आचार-परंपराका मुँह जोहना आवश्यक नहीं है। हमें दृढ़तासे केवल अेक बातपर अटल रहना चाहिये, और वह यह कि जिसे काव्य, नाटक या अुपन्यास-साहित्य कहकर हमें दिया जा रहा है वह हमें हमारी पशु-सामान्य मनोवृत्तियोंसे अूपर अुठाकर समस्त जगत्के दुःख-सुखको समझनेकी सहानुभूतिमय दृष्टि देता है या नहीं—हमें 'अेक'की अनुभूतिमें सहायता पहुँचा रहा है या नहीं। जो भी साहित्य भिसके बाहर पड़े, अर्थात् हमारी पशु-सामान्य वृत्तियोंको बड़ी करके दिखावे, हमें स्वार्थी और खंड-विच्छिन्न बनावे, अुसे हम साहित्य नहीं कह सकते, चाहे जितने बड़े साहित्यिक दल या संप्रदायका समर्थन अुसे प्राप्त हो। भिस विषयमें हमें साहित्यिक सिद्धान्तपर दृढ़ रहना चाहिये।

§१२०. साहित्यिक सिद्धान्तोंकी दृढ़ता क्या है? प्राचीन पंडितोंकी पोथियोंमें जब किसी नभी काव्य-परिभाषाकी स्थापना करनी होती है तो अुसके पूर्व और अुत्तर पक्षकी कल्पना करके बहस की जाती है। पूर्वपक्षमें

यह प्रश्न अुठाया जाता है कि अगर अिस परिभाषाको मान लेंगे तो पुराने कवियोंकी लिखी हुअी बहुत-सी कविताअें अिसके बाहर पड़ जायेंगी और अुन्हें काव्य नहीं कहा जा सकेगा। अुदाहरणार्थ :—

यदि काव्यका लक्षण यह हो कि 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' तो अैसी बहुत-सी कविताअें —जैसे चित्रकाव्य, अलंकार-बहुल पद्य आदि— अिस परिभाषाके बाहर पड़ जायेंगी; फिर अिनको कविता नहीं कहा जा सकेगा। अिसके अुत्तरमें कहवाया जाता है, 'तुमने तो हमारा अभीष्ट ही कह दिया, यही तो हम चाहते थे!' शास्त्रकी भाषामें अिसीको 'अिष्टापत्ति' कहते हैं। फिर प्रश्न होता है कि 'तुम अैसा कैसे कह सकते हो? तुम्हारी यह अिष्टापत्ति असंगत है, क्योंकि अैसा करनेसे शिष्ट-संप्रदायका विरोध होगा।' प्रायः ही अिस प्रश्नके साथ समझौता करनेके लिये अुन नीरस बातोंको भी निचली श्रेणीकी कविता मान लिया जाता है।

परन्तु आजके ज़मानेमें हमें अपने सिद्धान्तपर दृढ़ताके साथ जमे रहनेकी ज़रूरत है। आजकल प्राचीन कवि-संप्रदाय (शिष्ट-संप्रदाय) के विरोधका तो डर नहीं रह गया है, पर छापेकी मशीनने जो अत्यधिक साहित्यिक अुत्पादन करना शुरू किया है अुसके फलस्वरूप नित्य नये-नये 'शिष्ट-संप्रदाय' पैदा होते जाते हैं और होते रहेंगे। डर अिन्हींका है। हमें दृढ़ताके साथ मानना चाहिये कि भाव और शैली आदिमें कितने भी परिवर्तन क्यों न होते रहें, जो साहित्य हमें अेकत्वकी अनुभूतिकी ओर अुन्मुख करेगा, हमें पशु-सामान्य मनोवृत्तियोंसे अूपर अुठाकर प्रेम और मंगलमय मनुष्य-धर्ममें प्रतिष्ठित करेगा वही वस्तुतः साहित्य कहलानेका अधिकारी होगा।